Chap-4

चतुर्थ अध्याय

डा० धर्मवीर भारती प्रणीत काव्य -काव्य-कृतियां और उनका वर्गीकरण

चतुर्थ अध्याय

डा० धर्मवीर भारती प्रणीत काव्य : वर्गीकरण एवं भाव-योजना

डा० धर्मवीर भारती रचित काव्य-कृतियाँ

डा० धर्मवीर भारती जी के अब तक केवल दो ही काव्य-संग्रह 'ठण्डा-लोहा' (सन् 1952) तथा 'सात-गीत वर्ष' (1959 ई०) प्रकाशित हुए हैं। इनमें विविध भाव-स्तरों की कविताएं संकलित हैं। काल-क्रम की दृष्टि से दोनों संग्रहों में स्वतंत्रता प्राप्ति से लेकर सन् 1958 तक के काल की रचनाएं हैं। इनके पश्चात् तीसरा संग्रह अद्यावधि देखने में नहीं आया। शायद सम्भव है कि इसके पीछे कवि का मौन-अन्तराल ही कारणभूत हो। वैसे 'ठण्डा लोहा' की भूमिका में स्वयं कवि ने यह व्यक्त किया है कि - " मैं कविताएं बहुत कम लिख पाता हूं और अक्सर कुछ लिख लेने के बाद मौन का एक बहुत लम्बा व्यवधान बीच में आ जाता है जिससे अगले क्रम की कविताओं और पिछले क्रम की कविताओं का तारतम्य टूटा-टूटा-सा लगने लगता है।"[1] इनकी कुछ स्फुट रचनाएं जो संग्रहों में नहीं हैं, प्राय: सम-सामयिक विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। इनमें से कतिपय प्राप्त रचनाओं से लाभान्वित होने की चेष्टा की गई है। इनके अतिरिक्त डा० भारती जी की अन्य एक प्रबन्ध काव्य-कृति 'कनुप्रिया' है। इसका विचार प्रसंगोचित अवसर पर किया जायेगा।

अत: इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि डा० भारती जी की काव्य-प्रतिभा का उन्मेष स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्ष पूर्व ही (अपनी कैशोर्यावस्था में ही) हो गया था जिसका विधिवत् प्रकाशन द्वितीय तारसप्तक के रूप में सन् 1952 में हुआ। काव्य-चेतना की दृष्टि से यह समय हिन्दी-काव्य-जगत में एक नितांत नई मूल्यीय दृष्टि का उन्नायक या प्रवर्तक है।

1- 'ठण्डा लोहा' - भूमिका

HANSA MEHTA LIBRARY BARODA

वर्गीकरण :

उपर यह निर्दिष्ट किया गया है कि स्वातंत्र्योत्तर काव्य-चेतना संक्रमित मूल्यों की उपज है। अत: कभी उसकी एक ही प्रवृति में अन्य प्रवृत्तियों के स्वरों की अनुगूंज भी पाई जाती है। इस दृष्टि से डॉ० धर्मवीर भारती की काव्य-चेतना को भी देखा जा सकता है। कवि ने 'ठण्डा लोहा' की भूमिका में यह स्वीकार किया है कि - "मेरी परिस्थितियां, मेरे जीवन में आने और आकर चले जानेवाले लोग, मेरा समाज, मेरा वर्ग, मेरे संघर्ष, मेरी समकालीन राजनीति और समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियां, इन सभी का मेरे और मेरी कविता के रूप-गठन और विकास में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाग रहा है।"[1] इसी प्रकार अपनी छन्द-यात्रा के प्रमुख मोड़ों की ओर संकेत करते हुए आगे यह कहा है कि यद्यपि आज कवि का मन व्यक्तिगत जगत् की संकीर्ण गलियों से निकल कर बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए एक जनवादी भाव-भूमि की खोज के स्तर पर आ पहुंचा है तथापि कवि का मन कैशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्मसमर्पणमयी वैष्णव-भावनाओं की जिन गलियों से गुजर चुका है उनका अपना निजी महत्व है। वस्तुत: उन्हीं के माध्यम से कवि की परिवर्तित काव्य-चेतना का क्रमिक विकास हुआ है।[2]

अत: डा० धर्मवीर भारती की काव्य-चेतना के विविध स्वरों को देखते हुए उन्हें मुख्यत: निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) प्रणयानुभूति एवं विरह-वेदनामूलक रचनाएं।

(2) सौंदर्य चित्रण या रूपोपासना एवं नारी-भावना से युक्त रचनाएं।

1- ठण्डा लोहा- भूमिका

2- वही-

(3) प्रकृति-चित्रण सम्बंधी रचनाएं ।

(4) व्यंग्य-बोधक रचनाएं तथा

(5) स्फुट रचनाएं ।

उपर्युक्त विभाजन के आधार पर डा० धर्मवीर भारती जी के काव्य-व्यक्तित्व को मूलत: दो रूपों में देखा जा सकता है । एक व्यक्तिगत रागात्मक संवेदनाओं एवं रोमेंटिक कल्पनाओं के भावुक व संवेदनाशील कवि के रूप में दूसरे आधुनिक युग-बोध के जीवन्त कवि के रूप में । अस्तु, काव्य-विभाजन गत मुख्य-प्रवृत्तियों का अध्ययन यहां किया जा रहा है ।

(1) प्रणयानुभूति एवं विरह-वेदना मूलक रचनाएं :

सौन्दर्य और प्रेम मानव की रागात्मक मूल वृत्ति है । जो अनादि काल से ही युवा कवियों के हृदय का प्रमुख आकर्षण रही है । उक्त आदिम मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति भाव-वैविध्य के भिन्न-भिन्न स्तरों पर होती आई है । वस्तुत: सौंदर्य भी प्रेम के मूल में ही निवास करता है । कवि की दृष्टि प्रेम-सिंधु में जितनी गहन-गहराइयों में उतर पाती है, वह उतनी ही मात्राओं में आनंद के मोतियों को पा लेती है । अत: प्रेम के स्वरूप को किसी एक निश्चित परिभाषा में आबद्ध करके चलना सहज संभव नहीं । व्यक्ति, देशकाल और वातावरण के अनुसार भी उसके उपभोग एवं मूल्य-महत्व में परिवर्तन हो सकता है ।

डा० भारती का अधिकांश काव्य प्रेममूलक है । प्रणय सम्बन्धी रचनाओं में उद्दाम यौवन के अनेक विध तीव्र भावावेगों पर आधारित काम या वासनापरक मांसल प्रेम का रूप मिलता है जो उन्हें प्रकृतया उर्दू-फारसी के रोमानी तथा मध्य-कालीन हिन्दी के रीतिकालीन और वैष्णव कवियों की कोटि में लाकर रख देता है । किन्तु इन प्रणय-चित्रणों में जो एक नूतनता, ताजगी और अनूठापन है वह इन्हें एक

अत्याधुनिक प्रेम-कवि के रूप में भी समादृत कर देता है। प्रेम के उदात्त या लोक-मर्यादा से शासित सामाजिक रूप की झांकी भी इनके प्रणय-काव्य में मिलती है। डा0 भारती की प्रणयानुभूति अपने पूर्ववर्ती छायावादी कवियों की भांति अशरीरी, अगोचर, सूक्ष्म या अतीन्द्रिय न होकर स्थूल और लोक-सापेक्ष है। यहां पार्थिव प्रेम ही दिव्यता के चोले में सम्मूर्तित हो पाया है। तात्पर्य यह है कि दिव्य या लोकोत्तर प्रेम की अपेक्षा शारीरिक मिलन, स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन, केलि-सम्भोग आदि के स्थूल या मांसल उपभोग को कवि हेय या निंद्य नहीं मानता। जहां प्रेम में वासना है तो वह भी उसकी दृष्टि में पाप नहीं, प्रेम का पर्याय ही है। अत: यहां काम या वासना को नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखा गया। 'कनुप्रिया' के सन्दर्भ में यह बात और भी स्पष्ट की जा सकती है। डा0 सुरेशचन्द्र सहल जी के शब्दों में कहा जा सकता है - "ऐन्द्रिकता भारती की कविताओं में खूब मुखरित हुई है। भारती तो जिन्दगी और वासना का घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करते हैं।"[1]

प्रेम और वासना :

कवि ने बड़े साहस और दर्द भरी आवाज़ के साथ तथाकथित वासना के महत्व का गीत गाया है। इसी वासना पर तो उसका जीवन बरबाद हो चुका है -

"मुझे तो वासना का,
विष हमेशा बन गया अमृत
बाशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद।
मेरी जिन्दगी बरबाद।
इन फीरोजी होठों पर।[2]

1- नयी कविता और उसका मूल्यांकन- पृ0 146

2- ठण्डा लोहा(द्वि.सं0 1970) 'फीरोजी होठ'- पृ0 18

'गुनाह का गीत' शीर्षक कविता में कवि वासना को जिन्दगी के लिए आवश्यक मानकर उसे पुरानी मान्यताओं से मुक्त करना चाहता है -

'अगर मैंने किसी के होंठ के
पाटल कभी चूमे
अगर मैंने किसी के नैन के
बादल कभी चूमे
महज़ इससे किसी का प्यार
मुझको पाप कैसे हो ?
महज़ इससे किसी का स्वर्ग
मुझ पर शाप कैसे हो ?

+ + +

किसी की गोद में सिर धर
घटा घनघोर बिखरा कर,
अगर विश्वास सो जाये
धड़कते वक्ष पर मेरा
अगर व्यक्तित्व खो जाये ?
न हो यह वासना तो
जिन्दगी की माप कैसे हो ?'[1]

अतः यहां यह स्पष्ट है कि वासना प्रेम की पूरक या सहायक है, अन्यथा वह जिन्दगी की माप कैसे हो सकती ? आगे भी कवि ने प्रणय में निभ नहीं पाती

1- ठण्डा लोहा(द्वि.सं0 1970)'फ़ीरोज़ी होंठ'- पृ022

कभी इस तौर की शर्तें कि जहां विश्वास और व्यक्तित्व दोनों ही उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते हैं, कहकर वासना को प्रणय की आंखों से ही देखा है। वस्तुत: वासना मन का नहीं दृष्टि का विकार है। फिर चाहे कोई उसे गुनाह की ही दृष्टि से क्यों न देखें, दोष देखनेवालों का है। कवि ने इसी न्यायोचित दृष्टि को बड़े तर्क के साथ रखा है -

"गुनाहों से कभी मैली पड़ी
बेदाग़ तरुनाई -
सितारों की जलन से बादलों पर
आंच कब आई ?
न चन्दा को कभी व्यापी
अमा की घोर कजराई
बड़ा मासूम होता है
गुनाहों का समर्पन भी"[1]

कवि ने प्राकृतिक पदार्थों के सहज निश्छल प्रेमपरक व्यापारों के माध्यम से अपने प्रेम को निष्कलंकित व निर्बाध्य ठहराकर सामाजिक रूढ़ मान्यताओं को एक नई दृष्टि प्रदान करने की चेष्टा की है। ऐन्द्रिय बिम्बों के माध्यम से कवि ने यत्र-तत्र अपनी इसी वासनापरक भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। 'वसन्ती दिन' शीर्षक कविता में कवि यौनावेग से आविष्ट हो अपनी प्रिया को बड़ी निर्भीकता के साथ प्रणय-केलि के लिए आमंत्रित करता है।

1- ठण्डा लोहा (द्वि.सं0 1970) 'फीरोज़ी होठ' - पृ0 19

'यह छुई-मुई सा सकुचाना
भयभीत मृगी-सा घबड़ाना
यह नहीं लाज की बेला प्रिय,
कुंजों में छिप-छिप छेड़ रहा
दोशीज़ा कलियों का फागुन ।

+ + +

कुछ चुपके से समझा जाता यह
मस्त फिज़ां का सूनापन,
अम्बर से बरस रहे रिमझिम
मनहरन निमन्त्रन, आलिंगन, मीठी मनुहारें,
विष-चुम्बन ।[1]

इसी प्रकार 'बेला महका', 'तुम्हारे चरण' और 'जागरण' शीर्षक कविताओं में संयोगसुख के मीठे अनुभवों व उपलब्धियों को चित्रांकित किया गया है। बहुत दिनों के बाद फिर से फूलों के रूठे-बादलों का जिस्म कवि की बाहों में आ गया, उसका मन हर्षातिरेक में झूम उठा । देखिये मिलन-सुख की अभिव्यक्ति का जादू -

'आज हवाओं नाचो गाओ
बांध सितारों के नूपुर,
चांद ज़रा घूंघट सरकाओ
लगा न देना कहीं नज़र !
इस दुनिया में आज कौन
मुझ से बढ़कर है किस्मतवर
फूलों राह न रोको ! तुम
क्या जानो जी कितनेदिन पर

1- वही- पृ0 20

हरी बांसुरी को आयी है
मोहन के होंठों की याद ।
बहुत दिनों के बाद[1]

कवि इन मिलन क्षणों को अमर बना देना चाहता है । अपनी गोद में रखे हुए प्रेयसी के सुखद पांवों की मीठी स्पर्श प्रसादी पाकर आनंदानुभूति की सप्तरंगी कल्पनाओं में खो जाता है -

'ये शरद के चांद से
उजले धुले से पांव,
मेरी गोद में ।
ये लहर पर नाचते ताजे
कमल की छांव
मेरी गोद में ।
दो बड़े मासूम बादल,
देवताओं से लगाते दांव
मेरी गोद में ।[2]

'देवताओं से लगाते दांव' की अभिव्यंजना द्वारा कवि ने भौतिक प्रेम को स्वर्गीय या अपार्थिव प्रेम की भी ईर्ष्या के योग्य बना दिया है । प्रणयपरक चित्रों में मधुचर्या एवं आत्मरति जनित काम-सुखों की सरस व्यंजना हुई है । प्रेम भावना की प्रगाढ़ता में कहीं अहं भाव का विस्फालन भी देखा जा सकता है -

'जिनको बहुत बेबसी में पुकारा है
जिनके आगे मेरा सारा अहम् हारा है,

1- वही- पृ0 17

2- वही- पृ0 3

गजरे -सी बांहों का
रंग-रचे फूलों का,
बौराये सागर के ज्वार-धुले कूलों का,
हरियाली छांहों का
अपने घर जानेवाली प्यारी राहों का -
जितना इन सबका हूं
उतना कुल मिला कर भी थोड़ा पड़ेगा।
मैं जितना तुम्हारा हूं[1]

डॉ० भारती जी को प्रेम के मांसलतापरक चित्रणों में पर्याप्त सफलता मिली है। इस दृष्टि से वे देहवादी या भौतिक सुखवादी प्रेम-कवियों (*Love Poets*) के अधिक निकट ठहर पाते हैं। कवि ने एकाधिक स्थान पर आध्यात्मिकता को भी भौतिक प्रेम का ~~बबप~~ बाना पहना दिया है। भागवत के पृष्ठ पर रखी हुई बांसुरी को भी वह अपनी ऐन्द्रिकता के माध्यम से चुम्बन-सदृश अनुभूत कर पाता है -

आज माथे पर, नजर में बादलों को साधकर
रख दिये तुमने सरल संगीत से निर्मित अधर
आरती के दीपकों की झिलमिलाती छांह में
बांसुरी रक्खी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर[2]

इसी प्रकार प्रिया के चुम्बन और उसके वक्ष: स्थल में शीश छिपा लेने पर गीता के श्लोकों को भी उसी परिधि में समेट लिया है।

1- सात-गीत वर्ष (द्वि.सं0 1964) पृ0 119

2- ठण्डा -लोहा पृ0 33

इस प्रकार डा० भारती कीदृष्टि में ऐन्द्रिक-वासना पाप नहीं वरन् वह तो अमृत और निष्काम पूजा सी भावना की वस्तु है। इस तथ्य का समर्थन 'गुनाह के देवता' उपन्यास में भी किया गया है - "नहीं चन्दर, शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र है और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न है।"[1] 'ठण्डा लोहा' संग्रह की 'प्रार्थना की कड़ी' शीर्षक कविता में भी उक्त पावन प्रेम भावना का अंकन हुआ है।

प्रेम की पावनता और उसका उदात्तीकरण :

जहां दो प्रेमी महज दो तन न रहकर एक ही मन वा आत्मा की अभिन्न सत्ता में एकीभूत हो जाते हैं - दो भिन्न इकाई न रहकर एक सी समरसता का अनुपान करने लगते हैं वहां प्रेम की एकनिष्ठता एवं अनन्यता उन्हें उच्चतम धरातल पर ले जाती है। प्रेमी अपनी प्रेयसी के महज प्रणय को ही अपना सर्वस्व मान उस पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर देता है। वह अपनी प्रेयसी की प्रत्येक अवस्थाओं में एक दिव्य व अलौकिक आनंद की प्रतीति करने लगता है - प्रकृति कीसारी चेतना-प्रक्रिया के व्यापारों में उसे अपनी प्रियतमा के अनुराग की ही लाली दृष्टिगत होने लगती है -

लुटातीं जो मस्ती मदहोश
उसे पी कलिकाएं बेहोश,
बचाकर नभ के प्यासे नैन
खोलती मलय लाज के कोष
गगन-घन बादल दल में प्रान
एक कोई रिश्ता अनजान
गूंजती एक अटूटी प्यास,
प्यार की भूली-सी पहचान[2]

1- डा० भारती 'गुनाहों का देवता' पृ० 340

2- ठण्डा लोहा 'तुम' पृ० 27

और भी देखिये प्रेम ने कवि को कैसी विलक्षण किन्तु वास्तविक दृष्टि प्रदान की है -

`और सच पूछो मेरी प्रान ।
व्यर्थ है स्वर्ग, नर्क अनुमान
तुम्हारी मुसकाहट में स्वर्ग
तुम्हारे आंसू में भगवान ।`[1]

उक्त चित्र में `मुसकाहट` एवं `आंसू` में क्रमशः `स्वर्ग` और `भगवान` के पावन व दिव्य भावों का आरोप होने से धरती का प्रेम अलौकिक प्रेम की पावनता-चारुता की सहज प्रतीति करा देता है । कहना अनुचित न होगा कि इससे सूफी कवियों की लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना का भी संकेत मिलता है । इस दृष्टि से शारीरिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। किन्तु यहां प्रधानता लौकिक प्रेम की है । कवि डॉ० भारती ने धरती के प्रेम को ही स्वर्गोपमित किया है, बल्कि उससे भी श्रेष्ठ माना है । अतः वह इसे पाने के लिए स्वर्ग की कामना नहीं करता -

मैं कहता मैं चला स्वर्ग से
मुझको धरती प्यारी
मैंने अपने पापों का भी
नया सिंगार किया ।[2]

कवि ने इसी प्रेम के आगे मुक्ति, त्याग और हर प्रकार की साधनाओं को भी विवश व पराभूत कर दिया है । अतः उसके लिए अलौकिक वा लोकोत्तर प्रेम के लिए कठिन प्रयास करना आवश्यक नहीं है, जबकि एक मात्र लौकिक प्रेम में ही इतना आकर्षण और बल है, जिसके प्रबल प्रभाव स्वरूप प्रत्येक मुमुक्षु, त्यागी और साधक भी उसकी ओर लौटा चला आता है -

---

1- ठण्डा लोहा `तुम` पृ० 28

2- वही- पृ० 60

बड़ा मासूम होता है
गुनाहों का समर्पन भी
हमेशा आदमी
मजबूर होकर लौट आता है
जहां हर मुक्ति के, हर त्याग के, हर साधना के बाद ![1]

कवि ने अपने प्यार के देवता को लक्षित करते हुए तथाकथित लौकिक प्रेम की बार बार प्रशस्ति की है, उसकी महिमा-गरिमा का आद्योपान्त गान किया है। उसके विचारानुसार जीवन की वे सारी साधनाएं समर्पण और कामनाएं अपूर्ण और झूठी हैं जब तक किसी को उसके मधु-देवता की बांहों का प्यार भरा कसाव प्राप्त नहीं हो।

जन्म-जन्मों की अधूरी साधना,
पूर्ण होती है
किसी मधु -देवता
की बाहों में।
जिन्दगी में जो सदा झूठी पड़ी-[2]

ऐसा प्यार प्रार्थना की कड़ी के समान उज्ज्वल और पूज्य होता है। डा० भारती के इस प्रकार के उदात्त या तन्मयतापरक प्रेम-चित्रणों में वासना की गंध न होकर प्राय: पावनता या निर्मलता की ही प्रतीति ही होती है। यहां प्रियतमा के हर प्रकार के क्रिया-व्यापार, उसकी शारीरिक भंगिमाएं, व चेष्टाएं प्रेम भाव की गंगा में घुल-मिलकर पावन बन गई हैं। हृदय पर प्रेम का पूर्ण साम्राज्य

1- ठण्डा लोहा-पृ० 60

2- वही-(प्रार्थना की कड़ी-कविता) पृ० 6

स्थापित हो जाने पर प्रेमी अपने प्रेम के उस उत्तुंग शिखर पर पहुंच जाया करते हैं जहां बुद्धि, मन और वाणी की सत्ता प्राय: गौण हो जाती है ऐसी अपूर्व व दिव्य अनुभूति भी तन के माध्यम से ही साध्य की जा सकती है -

इस तन ने कितनी बार
प्रांजल, पवित्र स्नेह
मेरे हारे आकुल मन पर बिखेरा है
अब इसमें पहले से
कहीं अधिक ममता है
रस है
अपनापन है।
तन का -
केवल तन का रिश्ता भी
मांसलता से कितना ऊपर उठ जाता है
अब यह जूही के फूलों सा तन नहीं रहा
पर इसमें पहले से कहीं अधिक जादू है।[1]

उपर्युक्त उद्धरण में तन के माध्यम से ऊर्ध्व मन की ऊंची भूमिका तक पहुंचने की बात व्यंजित हुई है। इसी प्रकार 'ठण्डा लोहा' की 'एक पत्र' शीर्षक कविता में प्रेम दर्द को कवि ने शब्दातीत माना है -

सत्य तो यह है दिल का दर्द,
काव्य से परे शब्द से दूर
कि मन में जाने कितने भाव,
मगर मैं लिखने में मजबूर[2]

1- सात गीत (द्वि.सं0 1964) पृ0 49
2- ठण्डा लोहा-पृ0 36

इसी प्रकार प्रेम की उच्चतम अवस्था प्रबोधक स्थल विशेष कर 'कनुप्रिया' में भी मिलते हैं। यहाँ केवल इसका संकेत भर ही पर्याप्त होगा। प्रेम के महत्व को स्पष्ट करते हुए कवि ने उसे दिखावे या भुलावे की वस्तु नहीं माना है। उसकी प्रभावशाली सर्वोपरि सत्ता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है -

'अपने सारे पिछले जीवन
पर तीखे व्यंग्य वचन कहना
या छोटे-मोटे बेमानी कामों में भी
आवश्यकता से कहीं अधिक उलझे रहना
या राजनीति, इतिहास, धर्म, दर्शन के
बड़े लबादों में मुंह ढंक लेना
इस सब से केवल इतना जाहिर होता है
यों दुनिया-दिखलावे की बात
भले कुछ हो
इस पहले-पहले पावन आत्म-
समर्पण को
कोई भी भूल नहीं पाता
चाहे मैं हूं, चाहे तुम हो।[1]

अधिकांश स्थानों पर कवि ने पावन उज्ज्वल, निश्छल, निर्मल व पारदर्शी भाव-परक विशेषणों द्वारा अपने प्रेम की गरिमा को प्रकट करने का अभिरुख अपनाया है। इसके लिए कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं -

---

1- ठण्डा लोहा (प्रथम प्रणय-कविता) पृ० 73

सुनो
सच बतलाना
क्या तुमको कभी भी
किसी ने भी
इतना उजला, कोमल, पारदर्शी
प्यार किया ?[1]

पारदर्शी-प्रेम(Platomic Love) प्राय: सात्विक ही होता है तथा-

'इस तन ने कितनी बार
प्रांजल पवित्र स्नेह
मेरे हारे आकुल मन पर बिखेरा है।[2]

कवि नेप्रेम के दो अक्षारोंकी शक्ति के अद्भूत जादू को भी स्वीकार किया है -

'सुना है मैंने मधु के गीत
सिखा देता है कवि को प्यार,
सुना है पढ़ दो आखर प्रेम
कुशल बन जाता है संसार[3]

<u>लोक-मर्यादा और प्रेम :</u>

मुक्त और मर्यादित प्रेम के आधार पर प्राय: दो भिन्न प्रकार की मन: स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। प्रथम में प्रेमी अपने प्रेम को सारे बिश्व में मुक्त रूप से

1- सातगीत वर्ष- पृ0 113
2- वही- पृ0 49
3- ठण्डा लोहा- पृ0 35

चर्चा का विषय बनाना कतई उचित नहीं समझता। इसमें किसी भी प्रकार के सामाजिक बंधनों तथा मान-मर्यादाओं की चिंता नहीं की जाती। प्राय: शीरीं और फरहाद, तथा लैला और मजनूं का प्रेम ऐसा ही रहा है। द्वितीय श्रेणी में प्रेम को सामाजिक आदर्शों व मर्यादाओं के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया जाता है। भारतीय प्रेम का आदर्श यही रहा है। भारतीय प्रेमी प्राय: यह पसंद नहीं करता कि उसका प्रेम लोक चर्चा या लोक-निंदा का विषय बने। इस रूप में वह अपने प्रेम को ईश्वर सदृश गुह्य या गुप्त रखकर उसके पावन रूप-स्वरूप की रक्षा का ही प्रयास करता है। इसी लोक-रक्षा के विचार के कारण ही लोक-मर्यादा का प्रश्न भी मस्तिष्क में उपस्थित हो जाता है। कवि इसीलिए तो अपनी प्रेयसी को कसम के शब्दों में बांधते हुए कहता है -

'है कसम तुमको,
तुम्हारे कोंपलों-से नैन में
आंसू न आयें
राह में पाकड़ तले
सुनसान पाकर
प्रीत ही सब- कुछ नहीं है,
लोक की मरजाद है सब से बड़ी।[1]

इससे यह स्पष्ट है कि कवि ने लोक-मर्यादा को प्रीति से भी बड़ी माना है। कवि यह जानता है कि नारी-हृदय अत्यन्त कोमल व असहनशील होता है, इसीलिए तो वह पुन: कहता है -

---

1- वही (डोले का गीत) पृ० 11

मिलो जब गांव से
बात कहना
बात सुनना
भूलकर मेरा
न हरगिज़ नाम लेना।
अगर कोई सखी कुछ जिक्र
मेरा छेड़ बैठे
हंसी में टाल देना बात
आंसू थाम लेना।[1]

यहां यह स्मरणीय है कि डा० भारती की प्रेमिका भी लाजवन्ती सी शर्मीली स्वभाव वाली युवती है। उसे अपने घर-परिवार तथा समाज की चिन्ता-मर्यादाओं का ध्यान सदैव रहता है। इसीलिए तो वह अपने प्रेमी हृदय से लुक-छिपकर घर से दूर कहीं बांसों के झुरमुट में मिला करती है। कुछ देर तक बैठे अपनी कहनी-अनकहनी सुनाती रहती है। किन्तु इसके बावजूद भी, उसे अपनी मां का ध्यान हो आता है।

आज खा गया बछड़ा
मां की रामायण की पोथी।
अच्छा अब जाने दो
मुझको घर में कितना काम है।[2]

उसे भी लोक-लाज का भय है, अत: सब कुछ सहन करते रहना ही उसके भाग्य में लिखा है -

---

1- वही-(डोले का गीत) पृ0 10

2- वही- (फागुन की शाम) पृ0 12

पर फिर भी कुछ कभी न
जाहिर करती हूं इस डर से
कहीं न कोई कह दे कुछ,
ये ऋतु इतनी बदनाम है। [1]

स्वयं कवि भी तथाकथित पीडाओं को अपने हृदय में छिपाये रखता है। लोक-मर्यादा की रक्षा के कारण प्रेम-भावना का छिपाव एवं उसके अभाव में तद्प्रसूत पीड़ाओं की मौन स्वीकृति सहज ही सहनशीलता के रूप में अभिव्यक्ति पा लेती है -

न मुझसे आशा रक्खो
प्राण कि मैं गूंथूंगा आंसू हार
कि मैं लेकर दो मुरझे फूल
करु मृत जीवन को श्रृंगार
कि मैं कांटों से बचने हेतु
बिछादूं पथ पर अपना प्यार
तुम्हारी चोट, तुम्हारी भेंट
करुं उसको रो रो स्वीकार ?
नहीं इतने दुर्बल हैं प्राण
नहीं इतना दुर्बल है प्यार। [2]

तथाकथित प्रेम की लाज-भावना का विकास 'कनुप्रिया' में हो पाया है। यहां कनुप्रिया अर्थात् राधा के लिए केवल तन की ही लाज नहीं है किन्तु मन की भी लाज का होना नितांत आवश्यक है। यही लाज भय, संशय, गोपन व उदासी के

1- वही-(फागुन की शाम) पृ0 13

2- वही- पृ0 37

रूप में सरवढ़ी सहेलियों की तरह उसे घेर लेती हैं। - देखिये -

तुम यह क्यों नहीं समझ पाते कि लाज
सिर्फ जिस्म की नहीं होती
मन की भी होती है
एक मधुर भय
एक अनजाना संशय
एक आग्रह भरा गोपन,
एक निर्व्याख्या वेदना, उदासी
जो मुझे बार-बार चरम सुख के
क्षणों में भी
अभिभूत कर लेती है।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में आधुनिक परिवेश के युगल-प्रेमियों की भय, संशय और गोपनादि मनोवृत्तियों को भी उद्घाटित किया गया है।

प्रेम की स्वच्छंद भोग-वृत्ति का स्वीकार :

प्राय: नयी कविताओं में प्रेम के स्वच्छंद उपभोग की वृत्ति को अधिक महत्व दिया गया है। इसमें प्रेम के आदर्श रूप की अपेक्षा लौकिक धरातल पर अवस्थित यथार्थपरक सम्बन्धों की निर्व्याज अभिव्यक्ति पाई जाती है। "नयी कविता दमित वासना को उदात्त रूप देने की चेष्टा न कर उसका मनोवैज्ञानिक रूप प्रस्तुत करती है। नये कवि ने उदात्तीकरण के लिए यह प्रयत्न किया कि वह अपने प्रेम को प्रत्येक अर्थ में पावन मानकर और किसी अरूप की शरण में नहीं ... जाए।"[2]

1- कनुप्रिया(च0सं0 1973) पृ0 21

2- डा0 रांगेय राघव - 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और श्रृंगार-पृ0 17

उपर्युक्त तथ्य के आलोक में डा० भारती के प्रेम-काव्य को भी देखा जा सकता है। उनकी फीरोजी होंठ[1], बसन्ती दिन[2] तथा घाटी का बादल[3] आदि शीर्षक जैसी कुछ कविताओं में प्रकृति के माध्यम से मुक्त प्रेम-सम्बंधों की, अतृप्त भोगेच्छाओं एवं दमित-कुंठित काम-भावनाओं की प्रभावोत्पादक व्यंजना हो पाई है। 'कनुप्रिया' प्रबंध कृति की नायिका 'राधा' इसी कामेच्छाओं की परितृप्ति के लिए तीव्र कामेच्छा, उद्दाम केलि-क्रीड़ा तथा गहरे प्यार के पश्चात् बेसुध अचेतनावस्था में प्रेमी की बांहों में सोती हुई दृष्टिगत होती है।[4] तथा इसी प्रकार आधी रात के प्रणय शून्य सन्नाटे में कांपते गुलाबी जिस्म, गुनगुने स्पर्शों व बांहों में कसकर अस्फुट सीत्कारों और गहरी उसांस लेकर अपनी केलि-क्रीड़ा जनित थकान को दूर करने के लिए कनुप्रिया का शिथिल और बेसुध हो जाना आदि विविध भाव-दशा के चित्रों द्वारा प्रोक्त स्वच्छंद प्रेम-सम्बंधों की मांग सहज अभिव्यक्ति पा लेती है।[5] यही कारण है कि 'कनुप्रिया' की राधा कृष्ण के आदर्शों की उपेक्षा करके जीवन की सहज एवं वास्तविक स्वच्छंद भोग-वृत्ति को स्वीकार कर लेती है। चुम्बन, आलिंगन एवं मिलन-कांक्षा के अनेक विध चित्रों में उक्त भावों की अभिव्यक्ति हुई है। उदाहरणार्थ -

मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है
और जकड़ती जा रही हूं
और निकट और निकट
और तुम्हारे कंधों पर बांहों पर,
होंठों पर
नाग बधू की शुभ्र दन्त पंक्तियों के
नीले नीले चिन्ह
उभर आये हैं।[6]

1- ठण्डा लोहा पृ0 18
2- वही- पृ0 20
3- सात गीत वर्ष पृ0 120
4- डा0 भारती 'कनुप्रिया' पृ0 42-43
5- वही- पृ0 44-45
6- वही- पृ0 51

संक्षेप में कहा जा सकता है कि डा० भारती ने प्रेम के विविध भाव-व रूपों का बड़ा सजीव एवं प्रभावोत्पादक चित्रांकन किया है, जिसमें कवि के प्रेम-दर्शन को सहज ही देखा जा सकता है।

विरह-वेदना :

डा० भारती जी के काव्य में वर्णित विरह-वेदना का मूलाधार विश्वास-घात न होकर सामाजिक रूढ़ियों एवं नैतिक प्रतिबंधों से उत्पन्न सम्बंध-विच्छेद की पीड़ा है। अन्ततोगत्वा यही विरह-पीडा करुण स्थिति में परिणति हो गई है। कवि को अपने बचपन में ही किसी भोली-भाली ग्राम्य-बाला से एक अनजाने रूप से प्रणय हो गया था। तरुणावस्था में आते-आते यह और भी दाहक हो गया, और उसके जीवन को चुम्बनों के बदले हिचकियों से भर दिया। देखिये -

लेकिन मचल गयीं जाने
        कैसी भूलें अनजानी
कुछ तो तोड़-फोड़ के आदी
        बचपन ने जिद ठानी
कुछ तरुणाई के मौसम में
        अग्नि फूल ही फूले
    आग और बचपन ने ऐसे
            नये तरीके ढूँढे
    ले चुम्बन का मोल
            हिचकियों का व्यापार किया।[1]

1- ठण्डा लोहा पृ० 59

इसी प्रेम के विषामय अभिशाप ने हृदय का भीषाण तूफान बन, स्वर-द्रुम उखाड़ दिये हैं, प्रेम-भावना के विहग के स्वच्छंद गान को मौन कर दिया है।[1] यही मौन-वेदना आज वियोग-वेला के क्षणों में कवि से अपनी अभिव्यक्ति पा रही है, जिसका विचार निम्नस्थ रूपों में किया जा सकता है।

सम्बंध -विच्छेदजनित विरह- पीड़ा :

'ठण्डा लोहा' संग्रह की प्रथम कविता 'ठण्डा लोहा' में कवि ने सामाजिक बन्धनों से उत्पन्न सम्बन्ध विच्छेद की तीव्र व्यथा को व्यक्त करते हुए अपनी आत्मा की संगिनी से कहा है -

तुम्हें समर्पित मेरी सांस-सांस थी लेकिन
मेरी सांसों में यम के तीखे नेजे-सा
कौन अड़ा है ?
ठण्डा लोहा।
मेरे और तुम्हारे सारे भोले निश्छल
विश्वासों को
आज कुचलने कौन खड़ा है ?
ठण्डा लोहा।
फूलों से, सपनों से, आंसू और प्यार से
कौन बड़ा है ?
ठण्डा लोहा।[2]

1- ठण्डा लोहा पृ0 36

2- वही- पृ0 1

अत: स्पष्ट है कि सामाजिक व नैतिक प्रतिमानों ने कवि के निश्छल, पावन व फूल सदृश प्रेम को कुचल दिया है। यम के तीखे नेजे सदृश इसी ठण्डे-लोहे अर्थात् सामाजिक बंधनों की प्रबलता के कारण उसकी व्यथा और भी तीव्रतर हो उठी है। 'डोले का गीत', 'बातचीत का एक टुकड़ा' आदि जैसी कविताओं में भी कवि ने सम्बन्ध-विच्छेद जनित विरह-पीड़ाओं को मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। लोक-निंदा और भय से बचने के कारण कवि अपनी प्रिया से कहता है कि जब तुम डोले पर चढ़ अपने पी के नगर जाव तब गांव भर से मिलना, बातें करना, बातें सुनना किन्तु भूलकर भी मेरा नाम नहीं लेना। कोईसखी मेरा जिक्र छेड़ भी दे तब भी हंसी में बात टालते हुए अपने आंसुओं को प्रकट न होने देना।[1] इसी प्रकार उभय पक्ष की व्यथा और भी अधिक बढ़ जाती है जब अपनी विरह-व्यथा को छिपाने की चेष्टा करते हुए कवि अपनी दिन-चर्या के विषय में कुछ बातें करने लगता है -

देखा।
अब मैं पहले से कितना बेहतर हूं
तुम मेरी लापरवाही पर सिर धुनती थीं
अब रहन-सहन में कितनी स्वच्छ
व्यवस्था है।
तरतीबवार इस ओर किताबें सजी हुई
यह अलबम है ---------
मैं अब अपनी शामें बरबाद नहीं करता
कुछ काम काज में हरदम खोया रहता हूं

------------------------बातें ?
अब बातें करनेवाला रहा कौन ?[2]

1- ठण्डा लोहा 'डोले का गीत - पृ0 10

2- ठण्डा लोहा- 'बातचीत का एक टुकड़ा' - पृ0 74

इस प्रकार अपनी विरह-वेदना के निपटारे के लिए कवि बुद्धिपूर्वक रास्ता निकाल कर कहीं-कहीं हृदयस्थ नैराश्य भावनाओं का उदात्तीकरण करता हुआ दिखाई देता है। और भी देखिए विरह में प्रिया का प्रत्यक्ष दर्शन और कुछ सांसों में घुटी-घुटी बातचीत विरह की विषमता को और भी उद्दीप्त कर देती है।

पर यह क्या पागल !
मैं बेहतर हूं, सुख से हूं,
फिर इसमें ऐसी कौन बात है
रोने की ?
जाने दो,
लो यह चाय पियो।[1]

उपर्युक्त पंक्ति में व्याजोक्त कथन-शैली के माध्यम से युग्म-प्रेमियों की उद्वेग व निराशा की स्थिति का हृदयस्पर्शी चित्रांकन किया गया है। इसी प्रकार 'दूसरा पत्र' शीर्षक कविता में नायिका भी नायक से अपने को भुला देने के लिए विनती करती है। उसे अपने कमजोर एवं पराजित विश्वासों का बड़ा दर्द है। उन्हीं की शपथ देती हुई नायिका के नायक को आश्वासन भी नैराश्य भावनाओं तथा विसंगतियों के मार्ग से बचने के हेतु बुद्धि-संगत उपाय से ज्ञात होते हैं -

पर जाने दो
ये छोटी-मोटी बेमहत्व की बातें हैं
जिन को हमने
पागलपन में
बेहद महत्व दे डाला था -

1- ठण्डा लोहा- 'बातचीत का एक टुकड़ा- पृ0 75

तुम मुझको चाहे जो समझो
लेकिन मेरी इतनी विनती स्वीकार
करो
इन मुरदा सपनों को
सीने से चिपकाये रखने से ही
अब क्या होगा ?
ये मुरदा सपने
बूंद-बूंद करके तुम को पी डालें,[1]

इस प्रकार सम्बंध-विच्छेद जनित पीड़ा बोध के दग्ध दाणों में कहीं नैराश्य भावनाओं का उदात्तीकरण कहीं सामाजिक प्रतिबन्धनों के प्रति एक घुटन भरी आह और पराजित विश्वासों के एहसास को भी व्यक्त किया गया है। तथाकथित सम्बन्ध विच्छेद जनित विरह की अवस्था को कवि ने कहीं 'अभिशापग्रस्त प्रेतात्मा'[2] तो कहीं देवता और प्रेत के बीच की विचित्र सी योनि[3] कहा है। 'यक्ष का निवेदन' शीर्षक कविता में तो यक्ष के माध्यम से उक्त सामाजिक रूढ़ व अनावश्यक प्रतिबन्धनों को आग लगा देनेवाली कवि की विध्वंसात्मक भावना भी देखी जा सकती -

यह पथरीला दर्द काव्य का
मुझ से न सहा जाता,
भोजपत्र की परत-परत में
दबा घुटा मेरा मन,
+ +
काश कि दाण-भर इस कारा
से मुझे मुक्ति मिल पाती
मेघदूत के छन्द-छन्द में
मैं खुद आग लगाता।[4]

1- ठण्डा लोहा बातचीत का एक टुकड़ा - पृ0 42
2- वही- पृ0 39
3- वही- पृ0 57
4- वही- पृ0 58

प्रकृति के माध्यम से विरह -व्यंजना :

प्राय: प्रकृति प्रेमी युग्म को अपनी अनुकूल स्थितियों में सुखद होती है। नायिका अतीतकालीन स्मृतियों में खोई हुई है, इस वियोग बेला के तप्त क्षणों में एक पीली सी चिड़िया की ध्वनि उसे ताना या व्यंग्य कसती हुई प्रतीत होती है, और -

अब तो नींद निगोड़ी
सपनों-सपनों भटकी डोले
कभी-कभी तो बड़े सकारे
कोयल ऐसी बोले
ज्यों सोते में किसी विसैली
नागन ने हो काटा
मेरे संग-संग अक्सर
चौंक-चौंक उठता सन्नाटा[1]

इसी प्रकार बादलों की पांत भी विरही नायक पर बड़ा कहर ढाने लगती है। उसे बेसुध या पागल बनाने के लिए प्रिया के गर्म होठों पर सुलाता मूंगिया बादल अर्थात् चुम्बन ही काफी था, किन्तु परस्पर नागिनों के दल में उलझते आने वाले इन बादलों के लिए कवि की मार्मिक व्यंजना है -

मुझे इक साथ डंस लेते
बदलियों के हजारों फन
हुई जाती मुझे दुश्मन
मुझे दुश्मन हुई जाती
यह बादलों की पांत भी
दुश्मन हुई जाती मुझे[2]

1- वही- पृ0 13

2- ,, पृ0 15

'मेघ-दुपहरी' शीर्षक कविता में ढलती दोपहर के समय नायक के मन की अन्यमनस्कता, उदासी, बेचैनी आदि अवस्थाओं को प्रकृति की पृष्ठभूमि के माध्यम से उद्दीप्त किया गया है। मेघ-धूमिल दिशाओं की बांह में विरही नायक को कहीं एक उचटा हुआ सा सुनसान सन्नाटा अकेला जागता हुआ प्रतीत होता है, तो कहीं बहुत परिचित व बहुत प्यारा शहर भी अजनबी, और अरुचिकर लगने लगता है। बढ़ती हुई शाम में उक्त उदासी के कारण को स्मृति संचारी के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया गया है =

छू गयी मुझको
न जाने कौन बिसरी बात
भूला क्षण
जिस तरह छू जाय नागिन
फूल को खिलते पहर
ढल रही है
मेघ की चुनर लपेटे दोपहर।[1]

फूल को खिलते पहर नागिन को छू जाने में, उसे बिष सिक्त कर मुरझा देने में नायक की करुणाजनक स्थिति का सहज ही भान हो जाता है। इसी प्रकार 'सात गीत वर्ष संग्रह की' नवम्बर की दोपहर', 'फागुन के दिनकी एक अनुभूति', 'धूल भरी आंधी का गीत' तथा 'रात अंधियारी : हवा तेज' आदि कविताओं में प्रकृति के माध्यम से विरह-व्यथाओं की प्रभावोत्पादक अभिव्यंजनाएं हुई हैं। 'धूल भरे आंधी का गीत' कविता में धूल भरा पवन का झकोरा विरही प्रेमी की पिछली यादों को झकझोर कर चला जाता है। उसे ज्ञात होता है कि एक ऐसी ही झकझोरने वाली आंधी सी किशोरावस्था चली गई और अब

1- सात गीत वर्ष - पृ0 51

उसकी स्थिति देखिये, पवन के झकोरे को निमंत्रण के रूप में -

आंधी-सी ही थी जो निकल गयी
ऐ शेष रहे उखड़े बिरवे, टूटी डार,
उस दिन जो बहका तो आज तक
न पहुंच सका मैं अपने ही घर के द्वार
तथा
अब तो पग जर्जर, राहें ना मालूम
आ मेरे बालों को बिखरा कर चूम
मुझ पर कर टूटे पत्तों की बौछार
कसकन से भर मेरी पलकें मासूम
पतझड़ की संझा को
पाहुन बन कर आ,
जो सूखे मुंह, धूल-भरे पवन
झकोरे ?
ओ रे ।[1]

इस प्रकार विरही नायक की मनस्थितियों को प्रभावोत्पादक बनाने में प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप बड़ा सहायक हो पाया है ।

स्मृति के माध्यम से विरह-वर्णन :

डा० भारती जी के प्रणय-काव्य में अधिकतर स्मृति संचारी के माध्यम से विरह की स्थितियों को उजागर किया गया है । उक्त स्मृति-जन्य विरह दशा

1- सात गीत वर्ष- पृ० 57

भी उद्दीपन के विविध स्तरों पर अवलंबित है। प्रकृति के माध्यम से स्मृति-जन्य पीड़ाओं का अंकन पूर्व उद्धरित 'सात-गीत-वर्ष' की प्रकृति विषयक अनेक कविताओं में किया गया है। यह स्थिति कितनी दारुण हो जाती है जब वियोगी अपने प्रिय पात्र के अभाव में मिलन क्षणों की प्रत्येक सुखद घटनाओं को यादों का माध्यम बनाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं पाता। इसीलिए प्रेयसी को अतीत-सुख की एक एक कर सभी बातें याद हो आती हैं। घर में काम-काज का भार होने पर भी उसका छुपके से जाकर झुरमुट में प्रेमी से कहनी-अनकहनी सुनाना काई लगी सीढ़ी पर से फिसलना फिर प्रिय की बाहों में पड़कर शरमाना तथा उस दिन की रसीली छेड़-छाड़ में प्रिय द्वारा कंगन का टूटना और अपना रूठ जाना आदि स्मृतियाँ[1] उसे कितनी कष्टकर लगती होंगी? अतीत की मीठी स्मृतियों से दोनों ही हृदयों की उदासी और भी बढ़ जाती है। 'उदास तुम' वाले गीत-चित्र में किसी स्मृति ने प्रेयसी नायिका को और भी व्यथित कर दिया, उसकी उदासी का चित्र कितना मार्मिक है -

'भँवरों की पाँतें उतर उतर
कानों में झुक कर गुन गुन कर
पूछ रही- 'क्या बात सखी?
उन्मन पलकों की कोरों में क्यों
दबी ढँकी बरसात सखी?
चम्पई वदा को छूकर क्यों उड़ जाती
केसर की उसाँस?[2]

1- ठण्डा लोहा- पृ0 12

2- वही- पृ0 8

यहाँ डा० भारती की नायिका सूरदास की गोपियों की तरह रो-रोकर आँसुओं की नदियाँ नहीं बहाती और न जायसी की नागमती की भाँति ही साँसों के झूलों पर झूलती दृष्टिगत होती है। उसके विरह की स्वाभाविक स्थिति को बड़ी सजगता के साथ अंकित किया गया है। इसी प्रकार 'उदास मैं' शीर्षक कविता में भी कवि ने अगणित स्मृतियों के हृदय से टकराकर टूटने-बिखरने की व्यथा व्यक्त की है। उमड़-घुमड़कर बरसाती प्यार स्मृतियों के रूप में बार-बार घिर आता है और नायक विरही की उदासी घनीभूत हो उठती है। इसी स्मृति का व्यापक प्रभाव भी देखिए -

'स्वर्ण-धूल स्मृतियों की नस नस की
रस- बूँदों में आज
गूँथी हुई है ऐसे जैसे प्रथम प्रणय
में लाज,
बोल में अजब दरद के स्वर',
कि जैसे मरकत शय्या पर
पड़ी हुई हो घायल कोई स्वर्ण-किरन
सुकुमार !
उन्मन मन पर एक अजब-सा
अलस उदासी भार ![1]

'सात-गीत-वर्ष' संग्रह की 'आँगन'[2] और 'यादों का बदन'[3] जैसी कविताओं में भी स्मृति के माध्यम से विरह-वेदना व्यंजित की गई है। स्मृति

1- वही- पृ० 9

2- सात गीत वर्ष पृ० 58

3- ,, पृ० 100

द्वारा निर्मित कोई एक स्वप्निल बदन कांपते अंधेरे में नायक की बांहों में चुपके से आकर सो जाता है। विरही नायक के प्यासे व मिलन-कांक्षातुर मन की अनुभूति को कवि ने निम्नस्थ चित्र में अंकित किया है -

'छाया की रेखा - सा
बिलकुल अनदेखा सा
सांसों में बसता है
अंग अंग कसता है
रस भीने बन्धन में
करवट लेता है - खो जाता है
यादों का बना हुआ बदन-----'[1]

उक्त चित्र में दर्पित भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण कर स्मृति-स्वप्न का एक सुंदर निदर्शन किया गया है। 'अर्द्ध-स्वप्न का नृत्य' भी इसी प्रकार की कविता है। कोई नायक स्वप्न में किसी अनजाने तन का आभास पा लेता है। ऊनी फूलोंवाली रंगीन कालीनों पर अनदेखे पग में जादूभरे घुंघरू छमकने लगते हैं, नृत्य-संगीत का एक मधुर और आकर्षक वातावरण गूंज उठता है, ऐसे में गीत की पहली रंगीन पंक्ति को सुन नायक को अपने पिछले जन्म में सुनी हुई किसी गीत की पंक्ति याद हो आती है। उसे पीड़ा की आशंका होने लगती है कि क्या ये पिछली स्मृतियां, स्वप्नस्थ मिलनोत्सव और गीतों की सारी कड़ियां उसका साथ तो नहीं छोड़ देंगी ? निम्नोद्धृत पंक्तियों में उसकी बढ़ती हुई व्यथा को व्यक्त किया गया है -

'जाने क्या होना है ?
सच है या होना है ?
या यह भी खोना है ?
छलना की एक लड़ी।'[2]

1- सात गीत वर्ष- पृ0 100

2- ,, पृ0 87

पत्र-शैली के माध्यम से भी स्मृति-व्यंजक विरह-व्यथाओं का चित्रांकन किया गया है। इस दृष्टि से 'ठण्डा लोहा' संग्रह की 'एक पत्र' और 'दूसरा पत्र' शीर्षक कविताएं द्रष्टव्य हैं। इन कविताओं में विगतकालीन मीठी स्मृतियों के साथ ही वर्तमानकालीन करुण स्थितियों का चित्रण भी किया गया है। एक दिन अनजाने रूप से नायक को प्रेयसी की पाती मिल गई, किन्तु इससे उसकी व्यथा और भी वैसे ही बढ़ गई जैसे रेगिस्तान में पानी की दो बूंद प्यासे की प्यास को और भी बढ़ा देती है, किन्तु फिर भी यह पाती उसे नव-जीवन -दान देती हुई प्रतीत होती है।[1] उसे अपने प्रथम प्रेम- संताप का प्रसंग स्मरण हो आता है। देखिये -

ये माना जब थीं मेरे पास,
तृप्त था तन, मुग्ध था मन,
गुदगुदाता था कलियों को,
हंस-हंस कर मलय-पवन
कि ज्यों अलसायी पलकोंपर
स्वर्ण सपनों का सम्मोहन
बनी मायाविनि सी अनजान
सरल अपने जादू के ज़ोर
खींचती थीं जीवन की नांव,
मृदुल ममता की लेकर डोर[2]

और अब इन वियोग-वेला के दिनों में उसकी कैसी दयनीय स्थिति है -

1- ठण्डा लोहा- पृ0 35

2- वही- पृ0 36

'और अब , जब मैं मांझी एक
अकेला दुर्बल बाहु पसार
जरा बढ़ने का करता यत्न
मगर पड़ते उलटे पतवार[1]

इसी प्रकार प्रेयसी को भी याद हो आती है कि किस प्रकार उसने अपने प्रेमी के एक जन्म तो क्या अनगिनित जन्मों तक एक साथ रहने का संकल्प लिया था, उसे अटल विश्वास था कि किसी भी प्रकार उसके प्रेम पर, आत्मा पर आंच नहीं आने देगी । किन्तु आज उसके विश्वास पराजित हो गये -

'आत्मा की तरुणाई
कंचन- तन, कंचन -मन
सब महज़ खोखली परिभाषायें
सिद्ध हुईं '
अत: उसे दु:ख है कि -
इतनी जल्दी यह टूट गिरेगा
ताजमहल
इसका विश्वास तुम्हें तो क्या
खुद मुझे न था ।[2]

इसीलिए तो आज उसके जीवन के बाइस मधुमासों में ही उसकी दशा अत्यंत करुण बन गई है -

---

1- ठण्डा लोहा- पृ0 37

2- वही- पृ0 41

'इस नयी उम्र में जाने कैसा
असमय जर्जर वृद्धापन
इस तन- मन पर बूढ़े मुरदा अजगर
          - सा बैठा जाता है।

+   +

मेरे बाइस मधुमासों को
ढंक दिया किसी ने
मकड़ी के भूरे मटमैले जाले से
औ अंग-अंग में खिलने वाले
नये जवान गुलाबों की
पंखुरियों पर
अनगिनत झुर्रियां
रोज-रोज बढ़ती जातीं
मैं सांसें लेती हूं जैसे
टूटे-फूटे बरबाद मकबरे की
नीवों में दबी हुई
अभिशापग्रस्त प्रेतात्माएं
नि:श्वासें भरती हैं
अक्सर सन्नाटे में। [1]

स्मृति के मार्मिक चित्रणों में डा० भारती जी पूर्णतया सफल हो पाए हैं। स्मृति मनोदशा की भांति ही प्रतीक्षाभिलाषा के भी कतिपय हृदय-स्पर्शी चित्र मिलते हैं। 'शाम : दो मन: स्थितियां' शीर्षक कविता में नायक

1- वही- पृ० 39

अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करता है किन्तु वहां तो उसके द्वार पर केवल दर्द ही लौट आता है।

'क्या अजब है पुकारिए जितना
अजनबी कौन भला आता है
एक है दर्द वही अपना है
लौट हर बार चला आता है।'[1]

'इनका अर्थ' कविता में भी मिलन-कांक्षा की तीव्र मनोदशा का सुंदर चित्र आलेखित किया गया है। नायक प्रियतमा से मिलने के लिए जाने कितनी शामें बरबाद कर चुका है, कई बार घबड़ाते हुए यादें करता रहा, तो कई बार प्यासी सीपी सा उसका हृदय प्रिय के न मिल पाने पर विकल हो गया, और अब -

'ये लमहे, ये सारे सूनेपन के लमहे
जब मैंने अपनी परछाहीं से बातें कीं
दुख से सारी टूटी वीणाएं फेंकीं
जिनमें अब कोई भी स्वर न रहे
ये लमहे,
इनका क्या कोई भी
अर्थ नहीं ?'[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रतीक्षा जन्य निराशा, व्याकुलता, विकलता आदि मनस्थितियों की व्यंजना हुई है।

मान-मनुहार के अधिक चित्र नहीं मिलते। किन्तु इतना अवश्य है कि डा० भारती की नायिका लाज के घुंघट से दबी हुई है। यही लाज कभी-कभी मिलन के बीच व्यवधान बनकर उपस्थित हो जाती है। तब लज्जा से झेंपती हुई

1- सात गीत वर्ष- पृ० 97

2- ,, पृ० 44

नायिका को नायक मीठी मनुहार द्वारा किस प्रकार मना लेता है - देखिये -

`लतरों के ताजे फूलों पर,
भंवरों की ताजी भूलों पर,
बुनता है कोई प्रेम-सपन !
फूलों के कंधों पर सिर धर
सो रही तितलियाँ अलसा कर,
कुछ चुपके से समझा जाता यह
मस्त फ़िजां का सूनापन,
मनहरन, निमंत्रण, आलिंगन,
मीठी मनुहारें , विष-चुम्बन !
यह नहीं लाज की
बेला प्रिय,
कुंजों में छिप छिप छेड़ रहा,
दोशीजा कलियों को फागुन । [1]

डा० भारती जी की प्रबंध-काव्य कृति `कनुप्रिया` में डा० भारती की नायिका की इसी विरह व्यथा का विकास हो पाया है किन्तु यहाँ `मुरदा सपनों` को भुला देने की बात नहीं है। अंतर केवल इतना है कि तथाकथित दोनों संग्रहों में विरह व्यथा का आधार सामाजिक रूढ़ियों के कारण सम्बन्ध-विच्छेद की भावना है जबकि `कनुप्रिया` में इस विरह का कारण कृष्ण के इतिहास -निर्माणवाला व्यक्तित्व है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डा० भारती के विरह-काव्य में स्त्री और पुरुष दोनों की विरह-व्यथाओं का बड़ा ही

1- ठण्डा लोहा - पृ० 20

हृदयस्पर्शी चित्रांकन हो पाया है। प्राय: यहाँ लौकिक विरहानुभूतियों को ही अधिक महत्व दिया गया है। डा० भारती का कवि इन विरहानुभूतियों के माध्यम से किसी आध्यात्मिक भूमि तक जाने का प्रयास नहीं करता। वह तो विरह को जीवन में ठोस सत्य की तरह मानकर उसके महत्व का अंकन करता है -

'मगर यह सूनापन तो नहीं,
यही तो है जीवन की राह
मिलन में मादकता हो मगर,
विरह में भी तो कितनी चाह'[1]

सौंदर्यानुभूति एवं नारी-भावना :

डा० भारती जी की सौंदर्य-दृष्टि छायावादी कवियों की भाँति अतीन्द्रियपरक, अति सूक्ष्म एवं अति वायवीय न होकर आधुनिक नव-यथार्थपरक मांसल वा स्थूल सौंदर्यवादी चेतना से अनुप्राणित है। उनके सौंदर्यपरक चित्रणों में कहीं-कहीं आध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक शुचिता+ चारुता का भी आभास मिल जाता है। परम्पराग्रस्त सौंदर्य-चित्रण की आदर्शवादी प्रणाली से भिन्न नूतन सौंदर्य दृष्टि का उन्मेष डा० भारती जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है। एक बात अवश्य ही स्मरणीय है कि डा० भारती में छायावादी ढंग की किंचित कल्पना एवं रोमानी रंग का पुट भी देखा जा सकता है। अत: सूक्ष्म-सौंदर्य भी उभर आया है।

प्राय: सौंदर्य-चित्रण प्रकृति, प्रतीकों, बिम्बों तथा नवीन उपमानों के माध्यम से किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यान्वेषण के आलोक में यहाँ डा० भारती जी की सौंदर्यपरक कविताओं पर दृष्टिपात किया जा रहा है।

1- वही- पृ0 37

कवि ने कतिपय सौंदर्यपरक कविताओं में प्रेयसी के विवस्त्र या नग्न सौंदर्य का अंकन भी किया है जो उसकी भोगपरक यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। 'ठण्डा-लोहा' संग्रह की 'प्रार्थना की कड़ी' कविता इसका सुंदर उदाहरण है।

प्रात: सद्य:स्नान
कन्धों पर बिखरे केश
आंसुओं में ज्यों
घुला वैराग्य का सन्देश
चूमती रह रह
बदन को अर्चना की धूप
यह सरल निष्काम
पूजा-सा तुम्हारा रूप
जी सकूंगा सौ जनम अंधियारियों में,
यदि मुझे
मिलती रहे
काले तमस की छांह में
ज्योति की यह एक अति पावन घड़ी।
प्रार्थना की एक अनदेखी कड़ी।[1]

उपर्युक्त नग्न सौंदर्यांकन में कवि 'अर्चना की धूप' 'सरल निष्काम पूजा सा रूप' और 'प्रार्थना की अनदेखी कड़ी' आदि पंक्तियों में पवित्र भावों की प्रतीति करता दृष्टिगत होता है, साथ ही अंतिम पंक्तियों में

1- ठण्डा लोहा- पृ0 5

कवि की रूपासक्ति भी व्यंजित हुई है। ऐसे प्रभावान्वित रूप को वह अपनी गोद में भरे रखना चाहता है।

`अर्चना की धूप- सी
    तुम गोद में लहरा गयीं,
ज्यों भरे केसर तितलियों के परों की
        मार से,
सोन जूही की पंखुरियों से गुंथे
    ये दो मदन के बान
    मेरी गोद में।[1]

उक्त चित्र की अंतिम पंक्तियों में भी कवि की भोगवादी दृष्टि रूपासक्ति के रूप में मुखरित हो पाई है। इसी प्रकार `किसी निवसना जल-परी`[2] का बिम्बात्मक चित्र आलेखित किया गया है। उसके लज्जाभीत कंपन को नियति के टुकड़ों सा अर्थात् टूटे भाग्य सा कहकर सूक्ष्म-सौंदर्य का, `अंकन किया गया है। `उदास तुम` शीर्षक कविता में प्रिया के उदास हो जाने पर भी कवि की दृष्टि पे उसमें सौंदर्य के दर्शन कर लेती है -

`ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में
    सूने खण्डहर के आस-पास
    मद भरी चांदनी जगती हो।

और जब वह आंचल से मुंह को ढ़ंक लेती है तब वह ऐसी लगती है -

1- वही- पृ0 3

2- सात गीत वर्ष- पृ0 115

'ज्यों डूब रहे रबि पर बादल,
या दिन-भर उड़ कर थकी किरन,
सो जाती हो पाँखें समेट -
आँचल में 'अलस उदासी बन।
दो भूले-भटके सान्ध्य-विहग
पुतली में कर लेते निवास।
तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास।[1]

उक्त चित्र में प्रेयसी के सौंदर्य द्वारा प्रकृति का सजीव रूप साकार हो उठा है। 'कच्ची साँसों का इसरार' तथा 'मुग्धा' जैसी कविताओं में प्रेयसी के वय: संधि वाले सुकुमार अंगों एवं खिलते हुए नव यौवन के लालित्य का बड़ी कलात्मकता के साथ वर्णन किया गया है।

'ओ गंगा-जमुनी वय वाली
अभी छाँह से डरनेवाली
अभी करो मत तुम रतनारी किरनों से
सिंगार।
अभी शोख बचपन के पंखों में
दुबका है रूप।
जैसे बादल की परतों में ढंकी
सलोनी धूप।
धुंआ-धुंआ सी उड़ती नज़रें,
ज्यों घिर आये मेघदूत काले बादल
कचनार।[2]

1- ठण्डा - लोहा- पृ0 7

2- वही- पृ0 24

प्रेयसी के तन की सुकोमलता व सुकुमारता का सौष्ठव भी दर्शनीय है -

'कुंजों की छाया में झिलमिल
झरते हैं चांदी के निर्झर
निर्झर से उठते बुदबुद पर
नाचा करती परियां हिलमिल
उन परियों से भी कहीं अधिक
हलका-फुलका लहराता मन ।
तुम अभी सुकोमल, बहुत सुकोमल
अभी न सीखो प्यार ।'[1]

इसीलिए तो वह प्रेयसी नायिका को 'बिजुरी की नव चम चम चुनरी धारण करने के लिए कहता है। उसे यह उचित नहीं लगता कि अपनी प्रेयसी अभी बाली अवस्था में ही प्रेम या किसी अन्य प्रकार के श्रृंगार की सीमाओं में धूप सदृश खिलते यौवन को बांधती रहे।

प्राय: देह-सौष्ठव की सुकुमारता की प्रतीति दर्शन एवं स्पर्श से होती है। स्पर्शादि सुख से रूपासक्ति की भावना बढ़ती है। डा० भारती के काव्य में भी सुकुमारता का गुण शरीर-शोभा की अभिवृद्धि करने में बड़ा सहायक हो पाया है। 'जार्जेट का पीला पल्लव[2] नायिका के तन की कांति के रूप में कवि का ध्यान आकर्षित कर लेता है। इसी प्रकार लज्जा और स्मित-रेखा की रमणीयता व माधुर्य का गुण भी यत्र-तत्र अंकित हुआ है। जिसके परिणाम स्वरूप भोक्ता नायक या कवि के मन की आह्लादता एवं प्रसन्नता आदि जैसे अनुभाव वस्तुत:

1- वही- पृ0 25

2- सात गीत वर्ष- पृ0 27

तथाकथित रूपासक्ति अथवा भोक्ता के मन की रागात्मक स्थिति के द्योतक हैं। उदाहरणार्थ नायक के माथे पर प्रेयसी के रखे हुए अधर के लिए कवि कल्पना करता है कि जैसे आरती के दीपकों की झिलमिलाती छांह या प्रकाश में भागवत के पृष्ठ पर बांसुरी रख दी हो।[1] इसी प्रकार 'फीरोजी होठ' कविता में कवि ने नायिका की स्मित-रेखा का सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किया है -

'गुलाबी पांखुरी पर एक हल्की
सुरमई आभा
कि ज्यों करवट बदल लेती
कभी बरसात की दुपहर
इन फीरोजी होठों पर।'[2]

उक्त चित्र में वर्णित प्रेयसी के अधर गुलाब की पांखुरी से हैं। बरसात में सूर्य की धूप और छांह करवटें लेते रहते हैं, उसी तरह यहां स्मित-रेखा भी सुरमई आभा सी चित्रित की गई है। इसी कविता में नायिका के स्पर्श को बादल-से धुली कचनार की मृदुलता एवं नयनों की मादकता व रमणीयता को नरगिसों की पांत को शरमानेवाली कहना तथा मृनालों सी मुलायम बांह, सुहागन लाज में लिपटा शरद की धूप जैसा तन व अंधेरी रात में खिलते हुए बेले-सरीखा मन की कल्पना भी प्रिया की सुषमा-छवि की सुकुमारता को ही व्यंजित करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि डा० भारती जी ने केवल मांसल व स्थूल सौंदर्य का अंकन ही नहीं किया वरन् उसे अपने स्पर्श व चाक्षुष सुखानुभवों पर आधारित विभिन्न नवीन उपमानों, प्रतीकों व बिम्बों के द्वारा सूक्ष्म

1- ठण्डा लोहा- पृ० 33

2- वही- पृ० 18

एवं सजीव बनाने हेतु आकर्षक शिल्प-कौशल का विनियोग भी किया है। अतएव, यहाँ विभिन्न प्रकार के अंगों के वर्णन में सौंदर्य-विधायक नवीन वस्तु एवं नूतन-शिल्प-शैली दोनों ही का मणि कांचन योग हो पाया है। इसके प्रमाण स्वरूप ऊपर वर्णित रूप-माधुरी एवं रूपासक्ति के अतिरिक्त अंग-लालित्य के कुछ उदाहरण और भी ध्यातव्य हैं -

'दहकते दाड़िम पुहुप'[1]
होंठ : 'होंठ के पाटल
'मिसरी के होंठ[2]
तन : 'गुलाबी तन', 'कली सा तन'
'किसलय सा तन' चंदन सा
'तन' 'कंचन सा तन'
पांव : 'शरद के चांद से उजले
धुले-से पांव,
'लहर परनाचते ताजे कमल की छांह
'दो मासूम बादल' 'सोन जुही को
पंखुरियों से गुंथे, मदन के दो
बाण' व 'सात रंगों की महावर से
रचे महताब' आदि की सुंदर छवियां चरणों के लिए चित्रित की
गई हैं।[3]

पुतली : 'पुतली में दो प्यासे मधुकर' व
'कजरारी पुतरी पर फैला
काजर
या रात-रात भर जगी
रात थक कर,

1- ठण्डा लोहा- पृ0 22
2- ठण्डा लोहा- पृ0 7
3- वही- पृ0 3-4

सो गयी सुबह इन अलसायी
सी
पलकों पर अनजान ।[1]

यहां कजरारी पुतलियों पर फैला हुआ काजल में रात के सो जाने का आरोप किया गया है ।

अलकें : 'अलकें ज्यों सरि में नील
या लहर'[2]
केश : "बालों में अजब सुनहरापन
झरती ज्यों रेशम की किरन,
संझा की बदरी से छन- छन ।[3]

यहां केशोंं के सुनहरे पन को संध्या की बदली में से छनकर निकलती हुई रेशमी किरणों का रूप कवि की सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि का परिचायक है । इसी प्रकार -

'खुले ये काले-काले केस
सघन घन अलकों में बरसात
सघन घन अलकों में बरसात
कंवल पर ज्यों भंवरों की पांत
सुनहली सन्ध्या के चहुं ओर
नसीली गीली गीली रात[4]

1- वही- पृ0 29
2- वही- पृ0 30
3- वही- पृ0 7
4- वही- पृ0 27

प्रस्तुत चित्र में केश-शोभा के साथ ही प्रिया की मुख छवि का सुंदर अंकन भी देखते ही बनता है। मुख के लिए 'कंवल' व 'सुनहली सन्ध्या' तथा केश-राशि के लिए 'भंवरों की पांत' एवं 'नशीली गीली रात' नितांत नवीन उपमान हैं।

नयन : तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस बूंदे हैं

तथा, 'भरे, ये अरुन गुलाबी नैन
कि जिन से बेहिसाब अन्दाज़
छलकती है मस्ती दिन रैन'[1]

मस्ती और अंगड़ाई :

'लुटाती जो मस्ती मदहोश
उसे पी कलिकाएं बेहोश,
बचाकर नभ के प्यासे नैन
खोलती मलय लाज के कोष'[2]

प्रिया की मस्ती या
अठखेलियों की मादकता से
मलय का लजा जाना व
कलियों का बेहोश हो जाना
कहकर सुषमा जन्य प्रभाव
की अतिशय व्यंजना की गई है। इसी प्रकार प्रिया की अंगड़ाई का कमाल देखिये -

---

1- वही- पृ0 27

2- वही- पृ0 27

'अंगड़ाई ली बह चले पवन
गूँजे भंवरों के गान ।'[1]

और -

'तुमने मुड़ कर ली अंगड़ाई
पूरब में उषा शरमाई'[2]

यहां लज्जा, स्मित, सुकुमारता के सूक्ष्म-सौंदर्य की भांति ही मस्ती और अंगड़ाई का सूक्ष्म सौंदर्यांकन किया गया है।

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि डा0 भारती जी के सौंदर्य-परक चित्रण में अधिकतर कामपरक मादक अंगों की सुषमा-माधुरी ही प्राप्त होती है। रूप-छवि में नवीन उपमानों, व प्रतीकों के द्वारा प्रकृति-सौंदर्य एवं तज्जन्य विभिन्न व्यापारों का आरोप भी उक्त सौंदर्य-छटा के व्यापक प्रभाव को व्यंजित करने में सहायक हो पाया है। इस प्रभाव-व्यंजना के रूप में ही भोक्ता नायक वा कवि के मन की प्रबल रूपासक्ति की भावना को देखा जा सकता है। वस्तुतः रूप वा सौंदर्य की श्रेष्ठता आलम्बन के प्रति आश्रय की अतिशय रूपासक्ति द्वारा ही संज्ञात की जा सकती है।

नारी -भावना :

डा0 भारती जी के काव्य में प्रायः नारी का प्रेयसी, सहचरी, और सखी का रूप ही अधिक बार चित्रित हुआ है। उसमें नारी का मातृ रूप व पत्नी रूप का प्रायः अभाव ही है। नायिका के रूप में अनूढ़ा, मुग्धा एवं रति-श्रांता के साथ ही संभोग-दुखिता आदि प्रकार की नायिकाओं की झांकी मिलती है।

1- वही- पृ0 29

2- वही- पृ0 30

यहां मुख्यत: सामाजिक अभिशापों से ग्रस्त एवं संत्रस्त मध्यवर्गीय नारी का अपने वैयक्तिगत जीवन की समस्त कुण्ठाओं, अभावों एवं विसंगतियों के परिवेश में चित्रांकन हो पाया है।

डॉ० भारती जी के मतानुसार समूचे मानव-जीवन का सुख केन्द्र एक मात्र नारी ही है।

'जन्म-जन्मों की अधूरी साधना,
पूर्ण होती है
किसी मधु-देवता
की बांह में।
'जिंदगी में जो सदा झूठी पड़ी'[1] -

अत: जीवन के किसी भी क्षेत्र (धर्म, कला, इतिहास, राजनीति, दर्शन आदि) में उसके सहज समर्पण के आकर्षण को नहीं भुलाया जा सकता।[2] इसी प्रकार सारे दिन की थकान, नैराश्य, विकलता आदि के पश्चात् सन्ध्या के समय पत्नी का शीतल एवं सुखद आंचल कितना प्रिय लगता है।[3] प्रेयसी नारी कभी कभी तो पुरुष में अटूट व असीम विश्वास रखते हुए सबकुछ समर्पित करने के पश्चात् भी छली सी रह जाती है। और दुखों को सहती रहती है, यही उसका निश्छल व भोलापन है -

'मृदुल तुम किसलय सी अनमोल
न सह पाओगी मेरा हास

1-	ठण्डा-लोहा-		पृ० 6
2-	,,	(प्रथम प्रणय) कविता-	पृ० 73
3-	,,	,,	पृ० 72
~~4-~~	~~,,~~		~~पृ० 37~~

रहो तुम आंसू से सन्तुष्ट
करो तुम पीड़ा पर विश्वास
तुम्हारा भोला-सा विश्वास
ओह ओ भोली-सी विश्वास ।[1]

डा0 भारती जी की नारी में पुरुष प्रणय-सम्बन्धी आत्म-विश्वास की दृढ़ता पाई जाती है। इसके लिए उसे पुरुष का भी वैसा ही स्नेह-सम्बल चाहिए क्योंकि प्रेम उभय पक्षों की समरसता, एकरूपता व समतापरक स्थितियों में ही अपना विकास कर पाता है - तभी तो वह कहती है -

'मेरी आत्मा के संग
तुम्हारे अमिट स्नेह का सम्बल है
मैं अपनी अन्तिम सांसों तक
जीवन से हार न मानूंगी ।[2]

कवि ने नारी के इसी विश्वास को अपना प्रेमाश्रय मानकर 'घबड़ाहट की शाम' में सब काम-काज छोड़कर महज उसके पास नारी के बैठे रहने की उम्मर स्थायी इच्छा व्यक्त की गई है -

'आज छोड़ सब काम-काज
तुम बैठो मेरे पास ?
सांसों में उलझा दो अपनी
एक अलक बारीक,
माथे पर धर हाथ शर्ट का
कालर कर दो ठीक

1- ठण्डा-लोहा पृ0 37

2- वही- पृ0 41

धीमे- धीमे
और तुम्हारी ही गोदी में
आज आखिरी साँस तोड़ दे मेरा भी विश्वास ।[1]

कहीं-कहीं डा0 भारती जी की नारी विषयक भावना में 'सिद्धों की यह नारी भावना कि 'संसार रूपी विष से निवृत्ति पाने के लिए स्त्री रूपी विष की आवश्यकता है' की प्रभाव-छाया स्पष्टत:प्रतीत होने लगती है । वस्तुत: नारी के सहज आकर्षण से विमुख होकर कोई वास्तविक आनंद, (जो कवि की दृष्टि में स्वर्ग तुल्य है, जो नारी के साहचर्य से ही पाया जा सकता है) नहीं प्राप्त कर सकता । यही नारी संसार के विष तुल्य नैराश्य, अकुलाहट और अन्य प्रकार के दुखों से मुक्ति दिला सकती है । इसीलिए, डा0 भारती का कवि कहीं नारी में स्वर्ग और भगवान की झांकी कर लेता है तो कहीं नारी प्रेम विषयक वासना को पाप वा विष रूप न ज्ञापित कर अमृत तत्व की तथा परमोच्च आनंद जो स्वर्ग के देवताओं को भी नहीं मिल सकता को प्रतीत कर लेता है ।[2] यहां डा0 भारती जी की नारी के प्रति स्वस्थ प्रगतिशील चेतना के दर्शन हो जाते हैं । अत: यह कहना अनुचित न होगा कि छायावादोत्तर अन्य कवियों की भांति ही डा0 भारती जी के काव्य में भी फ्रायडादि की कामपरक भावनाओं से प्रभावित नारी का रूप प्रतिबिम्बित हो पाया है । जीवन की निराशा, थकान, एवं असफलताओं के बीच नारी के मादक एवं आनंददायक रूप का चित्रण तथाकथित तथ्य की सम्पुष्टि कर देता है । यही कारण है कि यदि डा0 भारती जी का प्रणयी कवि नारी के आकर्षण में, उसके किरनों की नरम मुलायम-बांहों के बंधन में आबद्ध हो जाता है या तो उसके धड़कते हुए वक्ष पर अपना व्यक्तित्व भी खो देता है, संज्ञाहीन हो जाता है तो वह उस नारी से तथोक्त आनंद की ही सम्प्राप्ति करता है ।

1- वही - पृ0 61

2- देखिये- ठण्डा-लोहा(कविताएं तुम्हारे चरण और गुनाह का गीत)

यद्यपि डा0 भारती जी ने नारी को आश्रय, सम्बल, जीवन की प्रेरणा एवं आत्म-संगिनी आदि के रूप में देखा है। किन्तु इतना होने पर भी उन्होंने नारी स्वभाव की कठोरता, उग्रता एवं विद्रूपता का भी अंकन किया है। यही कारण है कि डा0 भारती का कवि नारी में एक प्राणहर अंधकार की प्रतीति कर उस अंधकार-पूर्ण गलियारे से छुटकारा पाने की कोशिश करने लगता है। जब यत्न करने पर भी वह उससे छूटकर भाग नहीं पाता तब नारी प्रदत्त उपलब्धियों को सहज स्वीकार कर लेता है -

" अँधियारा हो ?
रोशनी नहीं ? प्रेरणा नहीं ?
आत्मा नहीं ?
अँधियारा हो ?
तुम जो भी हो स्वीकार मुझे।[1]

इस सहज स्वीकृति के क्षणों में ही वह अपनी आत्मा की प्यास को, बेबसी, तड़पन और अकुलाहट को नारी की मीठी गोद में, उसकी मंजुल बांहों में तथा मन से होनेवाली हलकी-हलकी बातों के रस में डीरहकर दूर कर देना चाहता है।[2] 'यह आत्मा की खूंखार प्यास' में कवि ने नारी के कोमल और कठोर, सहृदय और निर्मम दोनों ही रूपों की प्रतीति की है। कहीं उसे खूंखार प्यास को मिटाने वाला एक विराट सत्य कहा है तो कहीं उसमें आत्मा भी होती है या नहीं कहकर नारी की उपेक्षा भी की गई है।[3] नारी आत्मा की पावनता, मन की ऊँचाई और रेशम सपनों के विराट सत्य को अधिक समय तक ग्रहण नहीं करपाती, यही उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है। कवि ने इसका बड़ा ही व्यंग्य पूर्ण चित्र खींचा है -

---

1- वही- पृ0 65
2- ,, यह आत्मा की खूंखार प्यास
3- ,, ,,

'औरत फिर उसके बाद
वही रह जाती है,
वह तुच्छ ईर्ष्या, प्रबल अहम्,
वह आडम्बर,
वह ऊन सलाई के फन्दे से
जीवन का ताना-बाना बुनने वाली,
फिर सेज पलंग, ढीले तन,
चुम्बन- आलिंगन पर
ये सारे
ये चांद सितारे
इन्द्रधनुष बिक जाते हैं।[1]

जब नारी पुरुष की भावनाओं को भलीभांति समझ नहीं पाती तब नारी कवि को महज धोखा प्रतीत होती है। इसके फलस्वरूप जीवन उसे निरुद्देश्य सा ज्ञात होता है। इतना ही नहीं अपितु अपने समस्त व्यवहार को भी छल और असार्थक समझने लगता है।

'वैसे मेरी कोमलताएं, मेरी वाणी का रस
मेरी कला, कल्पना, दर्शन, यह सब केवल
धोखा
खूब समझ कर जीवन में आओ
वैसे मुझको क्या
मैंने तो हर- एक खिलौने को
स्वीकार किया।[2]

1- वही- पृ0 69

2- ,, पृ0 60

यहाँ एक बात और भी स्मरणीय है कि छायावाद-पूर्व कवियों की दृष्टि प्राय: किसी न किसी प्रकार के जीवन सम्बंधित परम्परानुमोदित मानवतावादी आदर्श पर आधारित रही है। अत: उनके काव्य में यथार्थवादी भूमि पर पुरुष एवं नारी के सामान्य रूप को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिल सका। इसके विपरीत स्वातंत्र्योत्तर कवियों की दृष्टि समकालीन जीवन के यथार्थ-सत्य को अपना लक्ष्य घोषित करती है। यही कारण है कि 'कनुप्रिया' की कनुप्रिया अर्जुन को दिए गए कृष्ण के उपदेश में से अपने लिए कुछ भी नहीं पा सकती। उसका सुख-केन्द्र कृष्ण का आदर्श चरित्र नहीं वरन् उनकी शारीरिक चेष्टाएं हैं -

'कर्म-स्वधर्म, निर्णय, दायित्व -
मैंने गली-गली सुने हैं ये शब्द
अर्जुन ने चाहे इनमें कुछ भी पाया हो,
इन्हें सुनकर कुछ भी नहीं पाती प्रिय,
सिर्फ राह में ठिठककर
तुम्हारे उन अधरों की कल्पना
करती हूँ
जिनसे तुमने ये शब्द पहली बार
कहे होंगे
तुम्हारा सांवरा लहराता हुआ जिस्म
तुम्हारी उठी हुई चन्दन-बाहें
तुम्हारी अपने में डूबी हुई
अधखुली दृष्टि
धीरे-धीरे खिलते हुए
तुम्हारे जादू भरे होंठ।[1]

1- कनुप्रिया- पृ0 76

अतः यह कहना न होगा कि अन्य नये कवियों की भाँति ही यहाँ नारी का परिवर्तित रूप चित्रित हो पाया है जिस पर फ्रायड के यौन-विज्ञान का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है।

डा0 भारती के नारी-चित्रणों में मध्यवर्गीय नारी का एक वह भी रूप मिलता है जिसमें नारी मध्यवर्गीय परिवार की जिन्दगी ढोती हुई प्रतीत होती है। वह लोक-लाज की मर्यादा व सामाजिक बंधनों के कारण अपनी इच्छा के विपरीत अनचाहे व्यक्ति से गठबंधन जोड़ने के लिए विवश हो जाती है। मध्यवर्गीय नारी की उक्त कुण्ठा को कवि ने 'डोले के गीत' में व्यक्त किया है।[1]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि डा0 भारती जी के काव्य में नारी के परम्परागत आदर्श रूप-चित्रण की अपेक्षा उसके यथार्थवादी रूप का नवीन रंग-रेखाओं में चित्रांकन हो पाया है।

प्रकृति -चित्रण :

डा0 धर्मवीर भारती जी के काव्य में प्रतिबिम्बित प्रकृति-चित्रण को मुख्यतया निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है। यथा-

(1) प्रकृति का आलम्बन रूप

(2) प्रकृति का उद्दीपन रूप

(3) प्रकृति का मानवीकरण

(4) प्रकृति का आलंकारिक रूप

(5) आंचलिक एवं प्रकृति के माध्यम से यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति।

1- दे0 - ठण्डा-लोहा- 'डोले का गीत'

(1) प्रकृति का आलम्बन रूप :

प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रित करने के लिए प्राय: दो प्रकार की प्रणालियां प्रचलित हैं - बिम्ब ग्रहण की प्रणाली और वस्तु या नाम परिगणन की प्रणाली । स्वातंत्र्योत्तर काव्य में प्रकृति का केवल कोरा यथार्थ चित्रण नहीं मिलता, वह अपने नवीन भाव-क्षेत्रीय उपकरणों के साथ चित्रित हुई है । बिम्ब-प्रणाली द्वारा कवि की मौलिकता एवं प्रकृति की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का पता चलता है, साथ ही इससे उसके वर्ण रंगों की पहचान, व नाद, गंध, स्पर्शादि की संवेदना का भी परिचय मिलता है । इसके विषय में आचार्य शुक्ल जी का कथन है - 'इसके द्वारा प्रकृति का एक ऐसा संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत कियाजाता है, जिसमें कवि कल्पना का पूरा-पूरा प्रयोग करता हुआ अपनी अनुभूति की व्यापकता के कारण प्रकृति के रम्य और भयानक रूप की झांकी दिखाता है,किन्तु दूसरी प्रणाली के अनुसार प्रकृति के वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि के केवल नाम ही गिना दिए जाते हैं और कोई सामूहिक प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया जाता है ।'[1] यहां यह विचारनीय है कि स्वातंत्र्योत्तर काव्य में प्रकृति को एक स्वतंत्र सत्ता मानकर उसमें अर्थ-ग्रहण की अपेक्षा बिम्ब-ग्रहण पर अधिक ध्यान दिया गया है ।

बिम्ब ग्रहण की दृष्टि से 'घाटी का बादल' कविता का एक खण्ड- दृश्य उल्लेखनीय है -

नदियां नीचे चमक उठीं
                    रुपाडोरी - सी
और दुधिया शीशे में से
झलक उठे हैं वृक्ष बांस के,
                    पुल लोहे के,

1- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिंतामणि(द्वितीय भाग), पृ० 3

धीरे- धीरे परतें कटने लगीं

धूम की

यहाँ वहाँ पर

पिघले सोने के पानी सी

धूप टपकने लगी

गाँव खिल गये फूल - से[1]

उपर्युक्त चित्र में रंग एवं नाद या ध्वनि पर आधारित बिम्बों के द्वारा प्रात:कालीन प्रकृति का चित्रण किया गया है। इसी प्रकार 'नवम्बर की दोपहर' में धूप के मीठे स्पर्श को 'जार्जेट के पीले पल्लें' की उपमा के द्वारा प्रकृति का स्पर्श-बिम्ब खींचा है -

'अपने हल्के- फुल्के उड़ते

स्पर्शों से मुझको छू जाती है

जार्जेट के पीले पल्ले सी

यह दोपहर नवम्बर की ।[2]

नादात्मक ऐन्द्रिक बिम्ब की दृष्टि से 'रात-अँधियारी ! हवा तेज' शीर्षक कविता में वर्णित प्रकृति का रूप भी देखिये -

दीख नहीं पड़ते हैं पेड़

मगर डालों से ध्वनियों के

अगणित झरने झरते झर- झर

तेज और मंद

हर झकोरे के संग

हवा चलती है और ठहर जाती है ।[3]

1- सात गीत वर्ष- पृ0 125-126

2- ,, पृ0 27

3- ,, पृ0 64

इससे यह स्पष्ट है कि अंधियारी में तेज हवा के झोंके से पड़ते हुए अगणित झरनों के रूप में झर-झर झरनेवाले पत्तों की ध्वनि से ही पेड़ों का बोध हो पाता है। अत: कवि का सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण अति सुंदर वष व सजीव हो उठा है।

कहीं-कहीं कवि ने लघु एवं संश्लिष्ट बिम्ब-योजना के द्वारा प्रकृति-चित्रण किया है जिसमें उसकी रमणीय कल्पना तथा अनुभूति की गहराई को देखा जा सकता है। इस दृष्टि से 'सांझ के बादल', 'यह ढलता दिन' तथा 'कस्बे की शाम' कविताएं उल्लेखनीय है। 'सांझ के बादल' के लिए कवि की सुंदर कल्पना है -

ये अनजान नदी की नावें
जादू के - से पाल
उड़ाती
आतीं
मन्थर चाल!
नीलम पर किरनों
की सांझी
एक न डोरी
एक न मांझी
फिर भी लाद निरंतर लातीं
सेन्दुर और प्रवाल।[1]

1- वही- पृ0 90-91

प्रस्तुत चित्र में कवि की रंग-दृष्टि विभिन्न लघु-खण्डों के चित्रांकनों में साकार हो उठी है। इससे कवि की घ्राणानुभूति का भी सहज बोध हो जाता है। संश्लिष्ट बिम्ब की दृष्टि से एक उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें प्रकृति द्वारा कवि के मन पर अंकित प्रभाव को व्यंजित किया गया है -

'यह ढलता दिन, बिखरे बादल
बेहद डूबा-डूबा-सा जी
जैसे कोहरे में डूबी हो
रंगीन गुलाबों की घाटी
अनजान दिशाओं में जाती यह
श्याम घटाओं की रेखा
मटमैले आंचल पर मोती-सा
चांद ढलक आया लेकिन-
मैंने जो आंसू पोंछ लिया,
किसने जाना ?
किसने देखा ?[1]

प्राय: डा0 भारती जी के काव्य में प्रकृति के यथार्थपरक रूप का अभाव है। जहां कहीं प्रकृति का सादा चित्रण प्रस्तुत हुआ है वहां भी प्रकृति के द्वारा किसी प्रकार की नूतन उद्भावना को देखा जा सकता है।

(2) प्रकृति का उद्दीपन- रूप :

इस रूप में प्रकृति मानव के सुख में सुखी एवं दु:ख में दुखी दिखाई देती है। तात्पर्य यह है कि प्रकृति के जो नाना रूप जहां संयोगावस्था में नायक-नायिका के

1- वही - पृ0 92

पारस्परिक अनुराग को तीव्र कर उन्हें आनंद प्रदान करते हैं। वहां इसके विपरीत प्रकृति के वे ही रूप वियोगावस्था में उन्हें अत्यंत व्याकुल एवं दुखी बना देते हैं।

मिलन-कामना की तीव्र बनानेवाला प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप का एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

'लतरों के ताज़े फूलों पर,
भंवरों की ताज़ी भूलों पर,
बुनता है कोई प्रेम-सपन !
फूलों के कंधों पर सिर धर
सो रहीं तितलियां अलसाकर,
कुछ चुपके से समझा जाता यह
मस्त फ़िजां का सूनापन,
कुंजों में छिप-छिप छेड़ रहा,
दोशीज़ा कलियों को फागुन। [1]

मिलन के क्षणों में वसंत का दिन अति आकर्षक व कामोत्तेजक बन जाता है। उपर्युक्त पंक्तियों में बसंत ऋतु की प्रकृति का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'ताजे फूल', 'भंवरों की गुंजारें', 'तितलियों की अलसा कर फूलों के कंधों पर सो जाना तथा 'कुंजों में छिप-छिप फागुन का कलियों का छेड़ना आदि सभी प्राकृतिक चेतना के उपादान रति भाव को उद्दीप्त करते हैं। इसी प्रकार 'फागुन की शाम' और 'बादलों की पांच' शीर्षक कविताएं दृष्टव्य हैं जिनमें नायक व नायिका के वियोग-जन्य दुख की अनुभूतियों को प्रकृति के वातावरण द्वारा और भी तीव्र किया गया है। देखिए -

---

1- ठण्डा-लोहा- 'बसन्ती दिन'- पृ0 80

'अब तो नींद निगोड़ी
सपनों-सपनों भटकी डोले
कभी- कभी तो बड़े सकारे
कोयल ऐसे बोले
ज्यों सोते में किसी बिसैली
नागन ने हो काटा
मेरे संग- संग अक्सर
चौंक-चौंक उठता सन्नाटा[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में कोयल की मीठी ध्वनि भी विरहिनी नायिका को विषैली नागिन के काटने सी प्रतीत होती है। इसी वियोग के क्षणों में बादलों की पांत भी विरही नायक को उलझते आते हुए नागिनों के दल के रूप में दिखाई देते हैं, और तब -

मुझे इक साथ डंस लेते
बदलियों के हजारों फन
हुई जाती मुझे दुश्मन
यह बादलों की पांत भी[2]

इसी प्रकार 'सात-गीत-वर्ष' की 'मेघु-दुपहरी' और 'धूल- भरी आंधी का गीत' कविताओं में भी प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप का चित्रण अंकित किया गया है।

1- वही- पृ0 13

2- ,, पृ0 15

(3) प्रकृति का मानवीकरण :

जहां प्रकृति को चेतन-सत्ता अवगापित कर उसे मानव के समान आचरण करते हुए देखा जाता है, वहां प्रकृति का मानवीकरण माना जाता है। यहां प्रकृति मनुष्य के हर्ष-शोकादि सभी प्रकार की भावनाओं तथा क्रिया-व्यापारों से संवेदित एवं स्पन्दित दिखाई देती है। प्राय: इस पर अंग्रेजी के रोमेण्टिकसिज्म का प्रभाव माना गया है तथापि भारतीय वांगमय के वैदिक साहित्य में प्रकृति के इस रूप का अभाव नहीं है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में प्रकृति के मानवीकृत रूप में अधिक विस्तार तथा वैविध्य को देखा जा सकता है।

'सात-गीत-वर्ष' की कविता- 'ढीठ चांदनी' में वर्णित चांदनी स्वभाव से ही ढीठ है, वह अधखुले झरोखें से दबे पांव अंदर प्रवेश कर कवि की नींद हराम कर देती है - इतना ही नहीं किन्तु और भी उसकी ढीठाई को देखिए -

माथा छू
निंदिया उचाटती है
बाहर ले जाती है
घण्टों बतियाती है
ठण्डी-ठण्डी छत पर
लिपट-लिपट जाती है
आजकल तमाम रात
चांदनी जगाती है।[1]

'घाटी का बादल' कविता में भी घाटी और बादल का नायिका और नायक के रूप में दोनों की रति-क्रीड़ा का बड़ा ही आकर्षक मानवीकरण हो पाया है।

1- सात-गीत-वर्ष - पृ0 103

'प्रात धूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी अभी जागी
खुमार से भरी
नितांत कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघ धूम के
औचक आलिंगन में पिसकर
रति-श्रान्ता सी मलिन हो गई । [1]

इसी कविता में पुनश्च छूटे हुए बादल के टुकड़ों का धौरी रजली गायें एवं चांदी के हिरन के रूप में मानवीकरण का एक चित्र भी है -

'केवल कुछ बादल के पीछे
छूटे टुकड़े
छायादार भाड़ियों में विश्राम कर रहे
जैसे धौरी गायें
एक अकेला चंचल बादल
चांदी के हिरने-सा घाटी में चरता है । [2]

इसी प्रकार 'बेला महका' कविता में कवि हवाओं को सितारों के नूपुर बांधकर नाचने, चांद को घूंघट सरका कर नजर न लगाने तथा फूलों को राह न रोकने की बात कहता है तब प्रकृति का सजीव व मानवीकृत वाला रूप साकार हो उठता है । [3] 'ठण्डा-लोहा' संग्रह की 'पावस-गीत' और 'नीली भील' कविताओं में भी चद्रांक, उषा और नीली भील का मानवीकरण किया गया है ।

1- सात-गीत-वर्ष- पृ0 120

2- वही- पृ0 126

3- ठण्डा-लोहा- पृ0 17

(4) प्रकृति का आलंकारिक रूप :

आदि काल से अब तक प्रकृति कवियों कोअपने नाना विध उपकरणों द्वारा अनेक उपमान प्रदान करती रही है। आधुनिक काल के नये कवियों ने प्रकृति के बहुश: दृश्यों एवं पदार्थों से नये उपमान ग्रहण करने की चेष्टा की है। प्राकृतिक उपकरणों का रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, विभावना, आदि अलंकारों के रूप में प्रयोग किया गया है। कवि ने यत्र तत्र प्रेयसी केसौन्दर्य का चित्रण करते समय प्रकृति के आलंकारिक रूपों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ -

'अँधेरी रात में खिलते हुए
बेले- सरीखा मन
मृनालों की मुलायम बांह ने
सीखी नहीं उलझन
सुहागन लाज में लिपटा
शरद की धूप जैसा तन'[1]

यहां उपमा एवं रूपक अलंकारों के रूप में प्रकृति के उपादानों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में उत्प्रेक्षा का सुंदर उपयोग दृष्टव्य है -

'अभी शोख बचपन के
पंखों में दुबका है रूप।
जैसे बादल की परतों में
ढंकी सलोनी धूप।
धुंआ- धुंआ -सी उड़ती नज़रें,--
ज्यों घिर आये
मेघदूत वाले बादल
कचनार।[2]

1- ठण्डा-लोहा- पृ0 18

2- वही- पृ0 24

प्रात:काल में सोकर जगी हुई सुंदरी के कथन में संदेह अलंकार की झांकी देखिए -

'तुम जागीं सुबह या जगा
तुम्हारी पलकों बीच विहान
कजरारी पुतरी पर फैला काजर
या रात-रात -भर जगी रात
थककर'[1]

संध्या का वर्णन करते हुएसांझ के बादल के साथ की गई विभावना भी अति सुन्दर है -

नीलम पर किरनों
की साँझी
एक न डोरी
एक न मांझी
फिर भी लाद निरन्तर लातीं
सेन्दुर और प्रवाल ।[2]

अलंकृत प्रकृति-चित्रण में कवि को नवीन चित्रण-शिल्प की शैली को सहज ही देखा जा सकता है ।

(5) आंचलिक प्रकृति एवं उसके माध्यम से यथार्थ-बोध की अभिव्यक्ति :

जहां प्रकृति के माध्यम से ग्रामीण नागरिक या आंचलिक लोक-जीवन के परिवेश विशेष को चित्रित किया जाता है, वहां प्रकृति का आंचलिक रूप होता है ।

प्राय: डा0 भारती के काव्य में प्राकृतिक आंचलिकता का चित्रण बहुत कम

1- वही- पृ0 29

2- सात-गीत-वर्ष- पृ0 91

ही हो पाया है तथापि इसके दो एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इस दृष्टि से 'बोवाई का गीत', 'फागुन के दिन की एक अनुभूति' तथा 'यह ढलता दिन' शीर्षक कविताओं को देखा जासकता है। आंचलिकता से समन्वितप्रकृति का नवीन रूप का एक चित्र देखिए :-

गोरी- गोरी सोंधी धरती-
कारे- कारे बीज
बदरा पानी दे।
बोने वालों! नयी फ़सल में बोओगे
क्या चीज़।
मैं बोऊंगा बीरबहूटी, इन्द्रधनुष
सतरंग
नये सितारे, नयी पीढ़ियां
नये धान का रंग
हम बोयेंगी हरी चुनरियां
कजरी , मेंहदी -
राखी के सूत और सावन की
पहली तीज!
बदला पानी दे। [1]

उपर्युक्त चित्र में ग्रामीण परिवेश के सांस्कृतिक रूप की सुंदर झांकी मिलती है। 'यह ढलता दिन' कविता में भी ग्राम्य-प्रकृति का सुंदर व भावोत्तेजक रूप मिलता है।

नावों ने लंगर डाल दिये
घाटों पर सन्ध्या-दीप जले
मेले से सब राही लौटे,
अपनी -अपनी चौपाल तले

1- ठण्डा-लोहा- पृ0 34

गहना गुरिया, पंख डलिया
टिकुली बेंदी, सेन्दुरी
सारी -
सोरह सिंगार सजे, सब गाँव
उनींदा हो आया लेकिन -
सुनसान कछारों से मुझको
आवाज किसी ने सहसा दी ।[1]

प्रकृति के माध्यम से किसी यथार्थबोध की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति भी स्वातंत्र्योत्तर काव्य की प्रमुख विशेषता रही है । इसमें प्रकृति के किसी खण्ड-दृश्य या उसके क्रिया-व्यापारों के माध्यम से जीवन की किसी मनोदशा या बोध आदि को उद्घाटित किया जाता है । इस दृष्टि से 'घाटी का बादल' रचना के निम्नोद्धृत अंश देखिए -

'दीखे नहीं,
मगर चीड़ों ने सन-सन कर
मदमाती गन्धों वाले
पवन सँदेसे भेजे
झुरमुट में सहमी चिड़ियों ने
दबे कण्ठ से मुझे पुकारा
दूर कहीं सुन पड़ा पहाड़ी
गाने का स्वर ।
थोड़ा-सा विश्वास लौट कर
आया मुझ में
दीख नहीं पड़ते हैं
पर इस गहन कुहा में

1- सात-गीत-वर्ष- पृ0 93

कितने ही जंगली रास्ते आते - जाते
पथिकों से अब भी सजीव हैं
अपराजित हैं जिनमें चलने की आकांक्षा ।
दीख नहीं पड़ता है सूरज
पर दो शिखरों बीच झर रही
दिव्य-ज्योति-सी धूप धुंधली ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रकृति के विभिन्न क्रिया-व्यापारों एवं उसके खण्ड-दृश्यों के द्वारा कवि ने आशावादी भाव-बोध की व्यंजना की है । इसी प्रकार 'आस्था' शीर्षक कविता में भी कवि ने प्रकृति के खण्ड-दृश्यों के द्वारा आशापरक भाव को व्यक्त किया है -

'रात
पर मैं भी रहा हूं निडर
जैसे कमल
जैसे पन्थ
जैसे सूर्य
क्योंकि
कल भी हम खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेंगे[2]

'अन्दरूनी मौत के लिए' शीर्षक कविता में कवि ने खिड़की के शीशे पर एक लकीर बनाती हुई और फिर दो समुन्दर की दो फांक के रूप में विखण्डित एवं नष्ट-प्राय: होती हुई बम्बइया बरसात की एक बूंद का बड़ा ही मार्मिक चित्र अंकित किया है ।

1- सात-गीत-वर्ष- पृ0 125
2- ,, पृ0 66

जिसके द्वारा अन्दरूनी मौत के एहसास को व्यक्त किया गया है -

'जरूरी नहीं कि कोई दर्दनाक
वाक़्या घटे
बस यूं ही किसी बम्बइया बरसात
की दोपहर
तुम अनमने बैठे हो
खाली दिमाग खिड़की के पार समुद्र
देखते हुए
और चौखट से झूलती
एक अकेली बूंद
खामोश चू पड़ने के पहले
भरसक थमे, रूके फिर गिरे
और शीशे पर एक लकीर बनाती
चली जाय
और तुम अकस्मात पाओ
कि समुन्दर दो फांक हो गया है
और एक लकीर उभर आयी है
तुम्हारे अन्दर'[1]

ऊपर विवेचित प्रकृति-चित्रण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डा0 धर्मवीर भारती जी के काव्य में पारम्परिक प्रकृति चित्रण के साथ ही नव्यतर प्रकृति चित्रण का भी रूप मिलता है। इसके द्वारा आंचलिक और सामाजिक संवेदनाओं के साथ ही व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों का भी चित्रांकन हो पाया है।

1- 'अन्दरूनी मौत के लिए'- डा0 भारती - 'ज्ञानोदय जनवरी 1968

(4) व्यंग्य-बोधक रचनाएं :

डा० धर्मवीर भारती जी केकाव्य में व्यंग्य एवं आक्रोश की एक प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है। इससे आधुनिक बौद्धिक एवं सजग कवियों के बीच एक प्रमुख व्यंग्यकार के रूप में उनके जागरूक एवंविद्रोहकारी व्यक्तित्व का एक पक्ष भी स्पष्टतया उभर आता है। कवि ने अपनी व्यंग्य पूर्ण अनेक रचनाओं में सामाजिक रूढ़ियों, स्थितियों अव्यवस्थाओं तथा सामयिक जीवन के खोखलेपन पर तीखा व्यंग्य किया है। अधिकांश रचनाओं में आधुनिक शासकों , जन-नायकों, नेताओं तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रतिकिया गया कवि का व्यंग्य अत्यन्त उच्च कोटि का हो पाया है। व्यंग्य में कहींथि कहीं हास्य की एक हल्की सी झलक भी मिलती है। देशी नीतियों के साथ एकाधिक स्थान पर विदेशी नीतियों पर भी व्यंग्य का स्वर मुखरित हुआ है। तीखापन एवं चुटीलापन डा० भारती जी के व्यंग्य-काव्य की प्रमुख विशेषता है।

काव्य में व्यंग्य जहां एक ओर सोद्देश्य होता है वहां ही दूसरी ओर वह पाठकों के क्षोभ एवं आक्रोश को अन्याय व अभद्र नीति-रीतियों केप्रति सचेष्ट करने का प्रयास भी करता है। कवि इसीलिए व्यंग्य को अपना सशक्त हथियार ~~बनाना~~ बनाता है। डा० जयकिशन प्रसाद जी के शब्दों में कहा जा सकता है -"कवि सुधार की भावना से प्रेरित होकर सामयिक समस्याओं के वर्णन में व्यंग्य-दृष्टि जोड़ देता है। वह पूंजीवाद को, उसकी शोषण की प्रवृत्ति को, आधुनिक राजनीति को उसकी झूठी लीडरी को तथा अन्य आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के समर्थकों को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है।"[1]

व्यक्ति-बोध के आधार पर आधुनिक सामाजिक स्थितियों एवं राजनीतिक अनीतियों के प्रति डा० भारती जी का व्यंग्य मुखरित हुआ है। इसी आधार पर उनकी

1- दे० हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल- पृ० 178

व्यंग्यपूर्ण रचनाओं पर विचार किया जा रहा है ।

सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य :

'प्रमथ्यु गाथा' शीर्षक लम्बी कविता में समाज के साहसहीन, मूर्ख, निष्क्रिय और अप्रगतिशील लोगों पर कटु व्यंग्य-प्रहार किया है । समाज के उन्नयन के लिए अग्नि अर्थात् नई चेतना और विवेक की ज्योति लानेवाले प्रमथ्यु जैसे साहसी व्यक्ति जब किसी प्रति-क्रियावादी हिंसक शक्ति से बुरी तरह मारे जाते हैं तब तथाकथित लोग तमाशा ही देखते रहते हैं - ऐसे व्यक्तियों में स्वतंत्र व निर्भय रूप से निर्णय लेकर शोषक तत्वों से लोहा लेने की शक्ति नहीं होती । देखिये -

'यह है करिश्मा और
हम सब करिश्मों के प्यासे हैं ।
चाहता अगर तो हममें- से हर एक
व्यक्ति
अपने ही साहस से प्रमथ्यु
हो सकता था
लेकिन हम डरते थे,
ज्योति चाहते थे
पर दण्ड भोगने से हम डरते थे ।
हम सब करिश्मों के प्यासे हैं
कोई भी करिश्मा कर दिखलाये
हम खुद क्यों लें कोई भी निर्णय
हम खुद क्यों भोगें कोई भी दण्ड ?'[1]

1- सात-गीत-वर्ष- पृ0 19-20

आगे चलकर अग्नि द्वारा और भी तीखा व्यंग्य किया है।

मुझ से
सुबह-शाम चूल्हा सुलगायेंगे
शय्या गरमायेंगे
सोना गलायेंगे
और ज़रा-सा मौका पाते ही
अपने पड़ोसी का सारा घर
फूकेंगे ?
मुझ को क्यों मुक्त किया
मुझको क्यों माथे से लगाकर
फिर फेंक दिया इन कायरों के बीच।[1] इसी प्रकार 'संक्रान्ति' नामक कविता में भी कवि ने ऐसे ही कायर व कमजोर व्यक्तियों पर व्यंग्य किया है जो नई क्रान्ति व चेतना के अभाव में जीवन के हर कष्टों को सहते रहते हैं। सामाजिक अभिशापों से किसी भय और आतंक के कारण जो लड़ नहीं सकते, अपनी क्रांतिकारी भावना के हर छंद को, हर शक्ति को छिपाये रखते हैं। ऐसे ही लोगों पर कवि का व्यंग्य है -

'चिन्तित माथे पर ये अस्त व्यस्त
बाल
उत्तर, पश्चिम, पूरब, दक्खिन-दीवाल
कब तक
आखिर कब तक ?

1- वही- पृ0 21

लड़ने वाली मुट्ठी जेबों में बन्द
नया दौर लाने में असफल हर छन्द
कब तक
आखिर कब तक ?[1]

'पराजित पीढ़ी का गीत' कविता में भी वैयक्तिक क्लीवता पर कवि ने व्यंग्य के छींटे कसे हैं। हममें जीवन-संग्राम से, जीवन की प्रतिकूल व विषम स्थितियों से लड़ने-जूझने की शक्ति नहीं है, फिर भी हम अपने झूठे पौरुष का, झूठे अहं का महज दम्भ ही भरते रहते हैं। कवि ने ऐसे ही खोखले व्यक्तित्व का पर्दा-फाश किया है -

'हम सब के दामन पर दाग
हम सब की आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी
तलवारों की मूठ।
हम थे सैनिक अपराजेय
पर हम थे बेबस लाचार
यह था कठपुतलों का खेल
ऊपर थी कलई, पर लकड़ी के
थे सब हथियार।[2]

ऐसे ही नपुंसक लोग जो अपनी वीरता का ढोल पीटते रहते हैं, झूठी आन, बान और शान के पुल बांधते रहते हैं। कवि ने समाज के इसी प्रकार के आडम्बर प्रिय व्यक्तियों पर 'बृहन्नला' के माध्यम से व्यंग्य किया है -

---

1- वही- पृ0 35

2- ,, पृ0 36-37

'किन्तु यदि वर्षों बाद मेरी रचनाएं
पढ़ने की जगह
मुझको आज देखो तुम -
तो कैसा लगेगा तुम्हें

+ +

कानों तक प्रत्यंचा खींचने के
लिए ख्यात
मेरी भुजाएं ये
मिलेंगी हर छोटे से दरबारी के
सामने
प्रणाम से झुकी हुई
पाओगे तुम मेरा ओजस्वी
सैनिक तन
कुत्सित नपुंसक मुद्राओं में
ढला हुआ ;
मेरा विख्यात धनुष
तुमको मिलेगा किसी निर्जन
तरु - शाखा पर
मुरदा चिमगादड़- सा टंगा हुआ ?
और भी-
कैसा लगेगा तुम्हें
जब तुम यह जानोगे
कि दूसरे जब जूझ रहे थे
नवयुग लाने को
मैंने सिर्फ उत्तरा की गुड़ियाँ
सजायी थीं । [1]

1- वही- 'बृहन्नला' पृ0 77-78

जब पाठक को तथाकथित वीर पुरुष की नपुंसक-मुद्रा का पता चल जाता है तब वह उस पर हाथ तो नहीं उठा सकता किन्तु उसके चेहरे पर हास्य की एक रेखा झलक उठती है। इसी कविता में समाज के तथाकथित झूठे व लोभी इतिहासकारों विलासी व कायर नृपतियों पर भी व्यंग्य किया गया है। 'साबुत आईने' और 'परिणति' शीर्षक कविताओं में भी कवि ने सामाजिक रूढ़ियों, झूठे व निरर्थक दिखावों तथा सामयिक नैतिक ह्रास पर तीखा प्रहार किया है। कवि सामाजिक चौखटों, बन्धनों आदि से छूटने का प्रयास करता है। किन्तु हर कदम उसे वही दर्पण मढ़ी दीवार सी असार्थक व निष्प्राण रूढ़ियां दिखाई देती है।

> 'फिर वही झूठे झरोखे द्वार
> वहीं मंगल चिन्ह बन्दनवार
> किन्तु अंकित भीत पर,
>   बस रंग से
> \+   \+   \+
> अनगिनत प्रतिबिम्ब हंसते
>   व्यंग्य से'[1]

अंतिम पंक्तियों में व्यंग्य का रूप दुहरा हो गया है। कवि सामाजिक चौखटों को बदलना चाहता है किन्तु वे इतने प्रबल हो उठे हैं, फलत: उनकी प्रबलता अनगिनत प्रतिबिम्बों के रूप में जैसे 'स्वयं कवि अर्थात् नई-चेतना -वादी व्यक्ति पर व्यंग्य करती सी प्रतीत होती है। 'परिणति' कविता में ऐसे आडम्बरप्रिय लोगों पर व्यंग्य किया गया है जो असाधारण बनने की होड़ में अनेक मुखौटे लगाकर अपने व्यक्तित्व की भोंड़ी नकल करते फिरते हैं -

---

1- वही- 'साबुत आईने' पृ0 62

वे अपने तमाम व्यक्तित्वहीन लोग
चारों ओर की असाधारणता से
आतंकित
ताकि वे असाधारणता पर हमला
बोल सकें
अत: तलाश करने निकल पड़े
अपने अपने लिए
असाधारणता का एक कवच,
मुखौटा
वे हर मोड़ पर
अपने चेहरे कभी हाथ में लेकर
कभी कनपटियों में खोंस कर
इन्तजार करते रहे कि
राह चलते लोग उन्हें देखें और
आक्रान्त हों।[1]

'बाणभट्ट' शीर्षक कविता में भी कवि ने ऐतिहासिक व साहित्यिक पात्र 'बाणभट्ट' के माध्यम से लोभी व युग-यथार्थ से दूर भागनेवाले साहित्यकारों पर तीखा व्यंग्य किया है। ऐसे साहित्यकारों के लिए साहित्यिक प्रतिभा व साहित्यिक सम्पत्ति उतनी महत्वपूर्ण नहीं जितनी भौतिक सम्पत्ति एवं तद जन्य सुख-सम्पन्नता। ऐसे ही गण्यमान साहित्यकारों के प्रति कवि का व्यंग्य भरा आक्रोश दर्शनीय है -

'सत्य है एक मणि जटित दुपट्टा, एक
मुद्रा-मंजूषा, एक पालकी।

1- डा० भारती 'परिणति'- ज्ञानोदय, जनवरी 1968

सत्य हैं आत्मा पर थोपी हुई
सीमाएं
सोने के जाल की ।
सत्य है कूटज्ञों, वधिकों, नगरसेठों
वेश्याओं के आगे
बिके हुए शब्दों की यह क्रीड़ा
सत्य हैं राजा हर्षवर्धन के हाथों
से मिला हुआ
पान का सुगन्धित एक लघु
बीड़ा
(चाहे वह जूठा हो,
पर उस पर लगा हुआ वर्कदार
सोना था ।
हाय वाणभट्ट ! हाय !
तुमको भी, तुमको भी, आखिर
यही होना था ।)[1]

अंतिम पंक्तियों में राज्याश्रित साहित्यकारों की लोभ-प्रिय वृत्ति की ओर भी व्यंग्यपूर्ण संकेत है ।

उच्चवर्गीय लोगों एवं राजनीतिक भ्रष्टाचार पोषक नेताओं पर व्यंग्य :

सामयिक सामाजिक व्याप्त बुराइयों और कुरीतियों पर किये जानेवाले व्यंग्य के अतिरिक्त डा0 भारती जी के व्यंग्य का दूसरा रूप राजनैतिक भ्रष्टाचार के

1- सात-गीत-वर्ष- पृ0 75

पोषक विविध तत्वों के पदार्पाश के रूप में भी दृष्टिगत होता है। कवि ने यत्र-तत्र स्वदेशी शासकों, जन-नायकों, रईसों-उमरावों एवं साम्राज्यवादी नीतियों पर व्यंग्य के छींटे कसे हैं। नेताओं की दम्भ-वादिता, अनैतिकता तथा कर्तव्यहीनता पर भी किया गया व्यंग्य उच्च कोटि का है। 'जिज्ञासा' शीर्षक कविता में वैयक्तिकता और सामूहिकता के बीच द्वन्द्व व घुटन का स्वर व्यक्त हुआ है। प्राय: अपने को जन-नायक कहलाने वाले लोग सामूहिक गति और प्रगति का जन-साधारण में स्वर फूंकते हैं और भोली-भाली जनता दृढ़ पग और उन्नत-मस्तक के साथ अपनी सामूहिक शक्ति और एकता का एहसास किए सामूहिक प्रगति का गीत ललकारती रहती है। किन्तु उसे यह नहीं मालूम कि जन नेता अपने अहं एवं व्यक्तिगत स्वार्थ के वशीभूत हो सामूहिक गतियों की वल्गा को अपनी इच्छानुसार मोड़ लिया करते हैं। तब जन-सामान्य की स्थिति तट पर पड़े हुए निरर्थक कूड़े सी हो जाती है। ~~हम सबके होठों पर सामूहिक गीत गतियों की वल्गा जन नायक के हाथ~~

'हम सबके होठों पर सामूहिक गीत
गतियों की वल्गा जन-नायक के हाथ
आयेगा ऐसा भी दिन
जब नायक की कोई छोटी-सी भूल
सहसा अभियानों को कर पथ भ्रष्ट-
युगवादी सपनों पर पड जाये धूल
आत्मा में केवल अंधियारा औ कष्ट,
कूड़े-सा हमको तज कर तट के पास
मन्थर गति से बढ़ जायेगा इतिहास
सामूहिकता भी केवल
साबित होगी जिस दिन छल।[1] इसी प्रकार 'कौन चरण?' कविता

में भी दम्भी व मिथ्या-भाषी नेताओं पर कवि का राजनैतिक व्यंग्य व्यक्त हुआ है।

1- वही- पृ0 33-34

हर एक सूत्र जिसको समझें हम
प्रभु का स्वर
कसने पर जिस दिन साबित हो
शब्दाडम्बर
हर कदम पड़े झूठा
जैसे चौसर का पिटा हुआ मोहरा
जिसकी लय पर
साधे हमने आत्मा के स्वर
वे अकस्मात् मुड़ जिस दिन पथ
गह लें दूजा
अन्तर में घुटती रह जाये टूटी पूजा[1]

इससे यह स्पष्ट है कि आज के नेताओं को पदान्तर करने में लक्ष्यों और सूत्रों को बदलने में देर नहीं लगती । ऐसे ही लक्ष्य एवं पदभ्रष्ट नेताओं पर कवि ने करारा व्यंग्य किया है । 'निर्माण-योजना' शीर्षक लम्बी कविता में कवि ने सरकारी योजनाओं एवं उसकी असफल रीति-नीतियोंपर कटु व्यंग्य किया है । प्राय: सामाजिक विषमता व अव्यवस्था का कारण राजनीतिक दूषण एवं उसकी कमजोरियाँ ही हैं । जिनके फलस्वरूप सामाजिक प्रगति एवं सुख-स्वास्थ्य का मार्ग अवरुद्ध हो गया है । कवि ने एक ऐसे ही स्रोत से फूटी हुई घृणा की नदी देखी है - जो

1- वही- पृ0 40

काली चट्टानों के
सीने से निकली है
अन्धी जहरीली गुफाओं से
उबली है।
इसको छूते ही
हरे वृक्ष सड़ जायेंगे
नदी यह घृणा की है।[1]

इतना ही नहीं किन्तु तथाकथित सत्ता एवं शक्ति सम्पन्न नर-पिशाची चालों ने जन-साधारण लोगों की सुख-सुविधाओं को हथिया लिया है - अतः कवि का व्यंग्य-आक्रोश है -

बिना किसी बाधा के
नित नयी दिशाओं के
जाने की सुविधा दो
बिना किसी बाधा के
श्रम के पसीने से
सिंची हुई फसलों को
खेतों से आंतों तक जाने की
सुविधा दो

इसी कविता में पूंजीपतियों और जमींदारों पर व्यंग्य किया है जो विषमता का बीज बोते रहते हैं। ऐसे ही लोग अपने सुख को विस्तृत कर सबको दुखी बनाते रहते हैं। साथ ही इसी कविता में ऐसे नेताओं पर भी तीखा व्यंग्य कसा गया है जो जनता में खोटे भाषण दिया करते हैं। झूठे भाषण-प्रिय ऐसे नेताओं को मंचों पर चिल्लानेवाले, भीड़ों में भटकने वाले, उन्मादग्रस्त रोगी के रूप में कल्पित

1- वही - पृ0 67-68

करते हुए उनमें वात-पित्त-कफ के बाद कवि ने एक चौथा रोग या दोष 'अहम्' को भी देखा है। ऐसे ही लोगों के स्वास्थ्य के लिए कवि का तीखा व्यंग्य देखिए -

वात पित्त कफ के बाद
चौथे थि दोष अहम् से पीड़ित हैं।
बस्ती- बस्ती में
नये अहम् के अस्पताल खुलवाओ
वे सब बीमार हैं
डरो मत - तरस खाओ।[1]

'पराजित पीढ़ी का गीत' और 'एक वाक्य' आदि कविताओं में भी कवि का व्यंग्य बड़ा उच्च कोटि का है। संक्रान्तिकालीन जीवन की अस्तव्यस्तता तथा बदली हुई सांस्कृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में प्रवर्तमान आत्महननकारी प्रवृत्तियां पनपी हैं। आधुनिक जीवन की टूटन, घुटन व आत्म-पीड़ा से निम्न मध्य-वर्ग ग्रसित है। इसका एहसास उच्च वर्ग के लोगों को नहीं होता। 'प्रभु' के माध्यम से जीवन-संघर्ष से अछूते रहनेवाले आराम-परस्त ऐसे ही रईसों-उमरावों व नेताओं पर कवि का तीखा व्यंग्य है -

तुमने कब झेली संक्रान्ति
तुम क्या समझोगे ओ प्रभु !
इन गत्यावरोधों का दर्द -
कैसे तरुणाई में ही
घुट मर जाते हैं विश्वास
प्राणों की समिधाएं जम कर
हो जाती हैं सर्द।
फिर भी यदि तुमको मंजूर
हमको भटकाओ कुछ और

1- वही- पृ0 70

यदि तुमको फिर भी मंजूर
सच्चाई की बाँहों में
हम सब पायें मत ठौर ।[1]

इसी प्रकार जो दामों के बल पर आदमियों को खरीदते रहते हैं उन्हें अपना क्रीत-दास बनाते रहते हैं, ऐसे अर्थ-पिशाच पूंजीपतियों पर किया गया व्यंग्य कवि की सजगता व जागरूकता का परिचायक है। तथाकथित लोगों पर कवि की व्यंग्य -भरी फटकार है -

'चेक बुक हो पीली या लाल
दाम सिक्के हों या शोहरत-
कह दो उनसे
जो खरीदने आये हों तुम्हें
हर भूखा आदमी बिकाऊ
नहीं होता है।[2]

'दान: प्रभु के नाम!' कविता में भी कवि ने जन-सेवा का, प्रभुताई और मसीहाई का झूठा दम्भ भरनेवाले नक्शाबीन लोगों पर व्यंग्य किया है।

'राह पर बिछाये हैं
मैंने जो -
तीखे नुकीले - ये
पूजा के फूल नहीं

1- वही- 'पराजित पीढ़ी का गीत' पृ0 37
2- वही- 'एक वाक्य' पृ0 73

शीशे के टुकड़े हैं -
पावों में गड़ेंगे जब
सामने पड़ेंगे जब
तुमको दिखायेंगे
कुछ टूटी शक्लें
प्रभुताई, मसीहाई
की भोंडी नक्लें
देख जिन्हें गुस्से से उबलता हूं
उबलता हूं
उबलता हूं[1]

मुनादी[2] 'पुराना किला'[3] और 'प्रमथ्यु' शीर्षक कविताओं में भी आभिजात्य व प्रतिक्रियावादी शक्तियों के प्रति कवि का व्यंग्य मुखरित हुआ है। देशी नीतियों के साथ ही विदेशियों की उन भेद और कूटनीति-परक चालों पर व्यंग्य किया है जो सदा से हिंसा, मित्रता और अनेक विध प्रलोभनों के माध्यम से भारतवर्ष को गुलाम बनाती रही है। कवि ने निम्नोद्धृत पंक्तियों में तथाकथित विदेशी नीतियों की पोल का भंडा-फोड किया है -

ढंग है नया
लेकिन बात यह पुरानी है
घोड़ों पर रख कर, या थैली में
भर कर,
या रोटी से ढंक कर,
या फिल्मों में रंग कर

1- वही- पृ0 84

2- कल्पना, अगस्त-1974

3- कल्पना-जून 1964

वे जंजीरें, केवल जंजीरें हीलायें हैं
और भी पहले वे कई बार आये हैं।[1]

'एक अवतार में' शीर्षक कविता में भी कवि का ईश्वर विषयक व्यंग्य व्यंजित हुआ है। भगवान के चौबीस अवतारों में एक अवतार कश्यप का भी गिनाया जाता है। मानव-शरीरधारी राम, कृष्ण, महावीर, बुद्धादि सभी अवतार लोक-सेवाश्रित एवं जन-उद्धारक होने के कारण जन-समाज में पूजनीय-आराधनीय हो सकें किन्तु अपने कश्यप अवतार में किसी प्रकार भी लोक-सेवा नहीं की। इस पशु अवतार में किसी प्रकार का कष्ट नहीं झेला। इसी बात पर कवि का बौद्धिक-व्यंग्य भी उल्लेखनीय है।

सुनते हैं तुम किसी अवतार में
कछुए थे
अपनी इस वज्रोपम पीठ पर
तुमने यह धरती टिकायी थी -
(लेकिन उपयोग क्या किया था
सुकोमल मर्मस्थल का ?
उससे क्या नीचे उतर
थाहा था अनस्तित्व का सागर
पतनोन्मुख होकर
दिग्भ्रम, निराशा, भटकन
सीलन, कीचड़, काई

1- सात गीत वर्ष- 'गुलाम बनाने वाले' - पृ0 72

पाप, उबकाई -
के स्तर हुए थे ?[1])

अन्य स्फुट कविताएं :

डा० धर्मवीर भारती जी रचित अन्य स्फुट कविताओं पर संक्षिप्त विचार कर लेना आवश्यक है। इस दृष्टि से उनकी विविध स्वरीय कुछ कविताओं पर दृष्टि-पात किया जा रहा है।

'ठण्डा-लोहा' संग्रह की 'सुभाष की मृत्यु पर' एवं 'निराला के प्रति' श्रद्धांजलिपरक कविताएं हैं। इनमें राष्ट्र-प्रेम के साथ ही जन-कल्याण की भावना भी मुखरित हुई है। 'सुभाष की मृत्यु' में कवि ने राष्ट्र-प्रेमी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया है। देश के सच्चे प्रेमी को स्वर्ग -सुख की अपेक्षा पुन: राष्ट्र-प्रेम व राष्ट्र-सेवा की कामना ही अधिक रहती है, इस तथ्य की अभिव्यक्ति निम्नांकित पंक्तियों में की गई है -

किन्तु स्वर्ग से असन्तुष्ट तुम, यह स्वागत का शोर
धीमे-धीमे जब कि पड़ गया होगा बिल्कुल शान्त,
और रह गया होगा जब वह स्वर्ग-देश एकान्त
खोल कफ़न ताका होगा तुमने भारत की ओर[2]

इसी प्रकार 'निराला के प्रति' कविता में नई युग-चेतना के प्रवर्तक एवं जन-संवेदना के महाकवि निराला जी के लोक-कल्याणकारी व्यक्तित्व का चित्रण

1- वही- पृ० 81-82

2- ठण्डा-लोहा- पृ० 47

किया है। कवि ने निराला में नये युग के शिव की उस प्रतिभा-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की है जिसने हंसते हुए युग का गरल पीकर अपनी ह जटाओं पर जन-कल्याण की अमृत गंगा को धारण किया था। किन्तु निराला जी के इस मतवाले पन को न समझ पाने के कारण हमने ही उन्हें पागल कह दिया। इस पर कवि का व्यंग्य है -

> जिसको समझ नहीं पाते हम
> तो कह देते हैं
> यह है केवल पागलपन`[1]

`थके हुए कलाकार` और `कविता की मौत` जैसी कविताओं में कवि की आशा एवं प्रगतिवादी चेतना मुखरित हुई है। `थके हुए कलाकार से` कविता में कवि सृजन की अधूरी बेला में ही थके और निरुत्साहित कलाकार को अपना सृजन पूर्ण करने के लिए अनेकविध प्रेरणा देता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

> `अधूरे सृजन से निराशा भला
> किस लिए जब अधूरी स्वयं पूर्णता ?
> सृजन की थकन भूल जा देवता।[2]

`कविता की मौत` भी बड़ी व्यंजनापूर्ण कविता है। इसमें कवि ने निम्न-वर्ग के दलित व उपेक्षित लोगों के प्रति उनकी प्रगतिशील कामता को लक्ष्य व्यंग्य कर अपनी करुणा व सहानुभूतिपूर्ण संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की है। कवि के लिए वही काव्य श्रेष्ठ है जो स्वर्ग और आकाश की बातें छोड़ आदमी की जमीं पर उतर आए। जब जन-सामान्य की संवेदनाओं को आत्मसात करनेवाली प्रगतिशील कविता एक तुलसी पत्र और दो बूंद गंगा-ल0 जल के बिना ही मर जाती है तब जन-चेतनावादी कवि का हृदय रो उठता है -

---

1- वही- पृ0 52

2- वही- पृ0 53

'मरी गयी कविता, नहीं तुमने सुना ?
भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी
उस अभागिन की अछूती मांग का सिन्दूर
मर गया बन कर तपेदिक का मरीज[1]

'कवि और अनजान पगध्वनियां' शीर्षक रचना में आशावादी स्वर प्रतिध्वनित हुआ है। इसी प्रकार 'फूल मोम बत्तियां सपने' कविता में आधुनिक यांत्रिक-भौतिक युग की व्यस्तता तथा जीवन-संघर्ष से हार कर रोनेवाले व्यक्ति को जीवन-जीने का संदेश दिया है -

यह दर्द विराट जिन्दगी में होगा परिणत
है तुम्हें निराशा फिर तुम पाओगे ताकत
ओ मेजों की कोरों पर माथा रख-रखकर रोनेवाले,
हर एक दर्द को नये अर्थ तक जाने दो।[2]

'कवि और कल्पना'[3] नामक रचना में कवि ने पराधीन भारत का बड़ा ही करुण चित्र अंकित किया है। साथ ही उसकी मुक्ति की कामना को भी कवि ने उत्साहपूर्ण शब्दों में व्यक्त किया है -

'सुनो सुनो नवीन स्वर
विशाल वक्ष ठोंक कर
सुदूर भूमि से तुम्हे जवान कवि पुकारता
लौट बन्धन तोड़ कर
बेड़िया झंझोड़ कर
नवीन राष्ट्र की नवीन कल्पना संवारता
स्वतंत्रते क्रान्ति ज्वाल में निडर
बनो सुकोशिनी[4]

1- वही- पृ0 44
2- ,, पृ0 88
3- दे0 दूसरा सप्तक- अज्ञेय-
4- ,, 'कवि और कल्पना'

इस प्रकार डा० भारती जी के काव्य में जन-व्यापी चेतना के साथ ही राष्ट्र-प्रेम व मानवतावादी चेतना का भी स्वर प्रस्फुटित हुआ है।

प्रबन्ध-काव्य

'कनुप्रिया' :

'कनुप्रिया' डा० भारती जी की प्रबंध कृति है। इसकी कथा-वस्तु का चयन राधा एवं कृष्ण के प्रणय-प्रसंगों से किया गया है। कवि ने अपनी उत्पाद्य एवं मौलिक उद्भावना-शक्ति के द्वारा राधा-कृष्ण के केलि-प्रसंगों पर आधारित मिथकीय व परम्परित ऐतिहासिक कथा-सूत्रों को आधुनिक युग-चेतना के अनुरूप नया रूप प्रदान किया है। विशुद्ध रूप से इस कृति के ऐतिहासिक बोध की झांकी उन स्थलों पर होती है जहां कवि ने भागवतीय कृष्ण के लीला-रूप की अवतारणा के साथ उनके महाभारतीय राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ और व्याख्याकारादि रूपों की नियोजना की है। किन्तु यहां यह भूलना न होगा कि प्रस्तुत कृति को राधा के माध्यम से देखा गया है। उसकी तन्मयता के क्षणों में गाए जानेवाले गीतों, वर्णनों, स्मृतियों, उद्गारों और कल्पनाओं के माध्यम से प्रस्तुत कृति का चित्र-पट निर्मित किया गया है। कनुप्रिया की समस्त प्रतिक्रियाएं जो उसके सूक्ष्म वैचारिक चेतना-प्रवाह की उपज हैं, इस कृति को प्रबंधत्व ही प्रदान नहीं करती वरन् नये रूप-गठन से उसे अलंकृत भी करती हैं।

तात्पर्य यह है कि यहां कृतिकार की दृष्टि में ऐतिहासिक कथा-सूत्रों पर आधारित बाह्य घटनाओं का महत्व नहीं है, महत्व तो उसका है जिसे कनुप्रिया ने अपनी भावाकुल तन्मयता के क्षणों में अपने भीतर ही अनुभूत किया। डा० भारती जी ने दो परस्पर विरोधी स्थितियों अर्थात् राधा की भावाकुल तन्मयता और उसके प्रश्नाकुल मन की प्रतिक्रियाओं को समन्वय के एक नये अर्थ तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया है। दोनों स्थितियां जो क्रमश: हृदय और

मस्तिष्क प्रसूत हैं भिन्न व पृथक होते हुए भी एक दूसरे की पूरक हैं। इनसे सम्बंधित दोनों प्रकार के कथा-सूत्र अपना निजी महत्व रखते हैं। इस प्रकार 'कनुप्रिया' का समस्त कथानक राधा-कृष्ण के पौराणिक व ऐतिहासिक रूप को बिना हानि पहुंचाये अपने आप में सर्वथा नवीन और मौलिक है। इसमें कवि की प्रबंध-प्रतिभा के अभ अभिनव कला-शिल्प का सहज ही परिचय मिल जाता है। इसके नवीन-वस्तु-बोध पर प्रकाश डालते हुए डा० बनवारीलाल शर्मा जी ने कहा है - "इसमें आज के युद्ध-जर्जर, राजनीति-पीड़ित अनास्थावादी विश्व में घटित होनेवाले नैतिक संघर्षों को, जो आस्था और अनास्था, घृणा और सौंदर्य-बोध, प्रेम और युद्ध की प्रवृत्तियों के बीच निरन्तर चल रहे हैं, राधा-कृष्ण की प्रेम-कथा के माध्यम से उपस्थित किया गया है।"[1]

इस प्रबंध कृति को 'पूर्वराग', 'मंजरी-परिणय', 'सृष्टि-संकल्प', 'इतिहास' और 'समापन' जैसे पांच खण्डों में विभक्त किया गया है। वस्तुत: उपर्युक्त विभिन्न खण्ड कनुप्रिया की प्रारम्भिक कैशोर्य-सुलभ मन:स्थितियों से समुत्पन्न विभिन्न प्रश्नों और आग्रहों के क्रमिक विकास के भिन्न-भिन्न सोपान हैं। कवि के संकेतानुसार यदि उपर्युक्त पांच खण्डों को काव्य-बोध के विकास की दृष्टि से देखा जाए तो उसके मुख्यत: तीन चरण दृष्टिगत होते हैं 'पूर्व-राग' और 'मंजरी-परिणय' उस विकास का प्रथम चरण, सृष्टि-संकल्प द्वितीय चरण तथा महाभारत काल से जीवन के अन्त तक शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार कृष्ण के इतिहास-निर्माण को कनुप्रिया की दृष्टि से देखनेवाले खण्ड-इतिहास तथा समापन इस विकास का तृतीय चरण चित्रित करते हैं।'[2] 'पूर्व-राग' खण्ड में पांच गीत हैं जो कनुप्रिया के भावाकुल व रागात्मक मन की विभिन्न स्थितियों के व्यंजक हैं। पहले गीत में राधा अशोक वृक्ष को कृष्ण-प्रेम का प्रतीक मानकर जाने कब से उसकी

1- दे० स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबंध-काव्य- पृ० 120

2- दे० कनुप्रिया 'भूमिका' पृ० 7

आराधना करती आ रही है, वह उसके रेशे-रेशे में समाई हुई है, किन्तु अशोक-वृक्ष को इस बात का ध्यान नहीं है, जैसे संवेदनापरक भावों की मार्मिक व्यंजना हुई है। राधा के इसी आराधिका वाले व्यक्तित्व से प्रस्तुत कृति का आरंभ होता है। दूसरे गीत में राधा अपने भीतर अज्ञात रूप से तरंगित कृष्ण के प्रेम-संगीत की लहरियों को अनुभूत करते हुए अपने हर्ष को व्यक्त करती है -

सुनो ! सच बतलाना मेरे स्वर्णिम
संगीत
इस क्षण की प्रतीक्षा में तुम
कब से मुझ में छिपे सो रहे थे । [1]

तीसरे व चौथे गीत में राधा के समर्पण भाव एवं बिम्ब-प्रतिबिम्ब जन्य प्रेमी की विभिन्न परिकल्पनाओं को प्रकृति के माध्यम से चित्रित किया गया है। राधा को समस्त प्रकृति कृष्णाकार सी लगती है -

मानो यह यमुना की साँवली गहराई
नहीं है
यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर
मुझे चारों ओर से कण-कण रोम-रोम
अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में
पोर- पोर
कसे हुए हो । [2]

पाँचवें गीत में राधा के पश्चाताप को व्यक्त किया गया है कि क्यों वह रास की रात में अंशत: को सम्पूर्ण बनानेवाले कृष्ण को छोड़कर असमर्पित ही लौट आई ।

1- कनुप्रिया पृ0 13

2- ,, पृ0 16

यहां कृष्ण के औपनिषदिक रूप की प्रतिष्ठा करते हुए कवि ने राधा के माध्यम से आधुनिक जीवन की पूर्णता व सार्थकता के प्रश्न को भी उठाया है।

'मंजरी-परिणय' नामक द्वितीय खण्ड में तीन गीत हैं - 'आम्र-बौर का गीत', 'आम्र-बौर का अर्थ', और 'तुम मेरे कौन हो ? इन तीनों गीतों के माध्यम से राधा और कनु के मध्य अभिसार, प्रतीक्षा और परस्पर के सम्बंधों को व्यंजित किया गया है। 'आम्र-बौर का गीत' में कनु की विफल प्रतीक्षा एवं निश्चित समय पर भय, संशय, गोपनादि वृत्तियों के कारण राधा के, संकेत-स्थल पर न आ जा पाने की विवशता से उत्पन्न उसकी वेदना-परक विभिन्न भाव-दशाओं का अंकन किया गया है। 'आम-बौर का अर्थ' गीत संकेतात्मक शैली में लिखा गया है जिसमें कृष्ण के प्रेम संकेतों का लाक्षणिक अर्थ स्पष्ट किया गया है, साथ ही कृष्ण के मान और राधा की मनुहार का भी सरस वर्णन किया है। 'तुम मेरे कौन हो गीत' में राधा के प्रश्नाकुल मन की स्थितियों का अंकन किया गया है। वह विस्मयता पूर्वक अपने आपसे ही प्रश्न करती है वे मेरे कौन हैं? इसका उत्तर भी वह अपने द्वारा ही देती है। उसे विभिन्न समयों पर कनु के 'अन्तरंग सखा', 'रक्षक' 'बन्धु', 'सहोदर', 'आराध्य' 'गन्तव्य' और 'शिशु' जैसे विविध रूपों की अनुभूति हो उठती है, साथ हीवह कनु के साथ अपने 'सखी-साधिका-बान्धवी-मां-बधू-सहचरी आदि नये नये रूपों की प्रतीति भी करती है।[1] उपर्युक्त राधा-कृष्ण के प्रेम-सम्बंधों की आधुनिक व्याख्या करते हुए डा0 हरिश्चरण शर्मा जी का दृष्टिकोण है कि 'वस्तुत: यहां 'कनुप्रिया' में स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की आधुनिक व्याख्या की गई है। राधा और कृष्ण तो केवल 'मीडियम' भर है। असल में तो पुरुष और नारी के विकास को सार्थक बिन्दु पर ले आने के लिए पुरानी बोतल को नये आसव से भरने का प्रयास किया गया है।'[2] उन्हीं के शब्दों में आगे

1- दे0 कनुप्रिया पृ0 38

2- डा0 हरिश्चरण शर्मा- 'नयी कविता : नये धरातल' पृ0 201

और भी कहा जा सकता है कि `कनुप्रिया के `पूर्वराग` और `मंजरी-परिणय` (`तुम मेरे कौन हो?` गीत को छोड़कर) में राधा का जो व्यक्तित्व प्रतिफलित है उसमें मध्यकालीन वातावरण की अनुगूंज अधिक सुनाई देती है। ------राधा को भावाकुल व्यक्तित्व, प्रणयाकांक्षा, मिलनोत्सुकता , विरह-वेदना और तन्मयता की स्थिति सभी कुछ वैष्णव और रीति-कविता के धरातल पर चित्रित किया गया है।[1] किन्तु यहां यह कहना अनुचित न होगा कि केवल परम्परित चरित्र को चित्रित करना आज के कवि का प्रमुख लक्ष्य नहीं है, वह अतीत की अपेक्षा वर्तमान को प्रमुखता देता है। प्राचीन चरित्रों में आधुनिकता के अनुरूप नवीन रूप-रेखाओं को उभारने का प्रयत्न करता है। इस दृष्टि से कनुप्रिया के व्यक्तित्व को भी देखा जा सकता है। उपर्युक्त परम्परित श्रृंगारिक वर्णनों की या राधा के रीतिकालीन व्यक्तित्व को आधुनिक फ्रायडवाद के यौन एवं स्वप्न-परक सिद्धांतों के साथ जोड़ने से तथाकथित बात की पुष्टि की जा सकती है। इसमें वर्णित शारीरिक सुख-कांक्षाएं व मिलन एवं उसके अभाव जनित कामपरक विभिन्न भावनाएं फ्रायड के अवचेतन मन की दमित भावनाओं पर आधारित है। स्मृति एवं संकेत शैली के माध्यम से वर्णित संयोग-वियोग जनित मन की विभिन्न स्थितियों के अंकन में फ्रायड के काम-विज्ञान के प्रभाव को स्पष्टतया देखा जा सकता है।

अतः यह कहना असमीचीन न होगा कि कनुप्रिया का भावाकुल तन्मयतापरक व्यक्तित्व जहां एक ओर परम्परित रीतिकाव्य के श्रृंगारिक वातावरण को एक साथ लेकर चला है वहीं दूसरी ओर फ्रायड के मनोविज्ञान से भी प्रभावित है। इस प्रकार डा० भारती जी ने रीतिकालीन श्रृंगारिक शैली को आधुनिक फ्रायडीय मनोविज्ञानिक शैली के साथ जोड़कर भी देखने का प्रयास किया है।

1- वही- पृ० 199

तथा इसी प्रकार विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए `मूल्यांकन` मार्च 66 सं० डा० शंभूनाथ चतुर्वेदी, व डा० गिरीशचन्द्र त्रिपाठी ` में डा० शंभूनाथ चतुर्वेदी जी का लेख-` कनुप्रिया : प्रतिक्रियाएं " ।

इसके पश्चात तीसरा खण्ड है - 'सृष्टि-संकल्प' जो राधा और कनु के दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक रूप को प्रकृति के माध्यम से रूपायित करता है। इसमें भी तीन गीत हैं - 'सृजन-संगिनी', 'आदिम-भय' और 'केलि-सखि'। इसके कथा-विकास का यही तृतीय चरण है। 'सृजन-संगिनी' शीर्षक कथा-गीत में राधा सृष्टि के समस्त प्राकृतिक व जैविक पदार्थों को कनु की इच्छा और संकल्प-शक्ति का परिणाम मानती है।

'यदि इस सारे सृजन, विनाश,
प्रवाह
और अविराम जीवन-प्रक्रिया का
अर्थ केवल तुम्हारी इच्छा है
तुम्हारा संकल्प,'[1]

किन्तु इससंकल्प व इच्छा को वह अपने से भिन्न नहीं समझती। इस संकल्प का अर्थ ही वह स्वयं अर्थात् कनुप्रिया है।

'वह मैं हूं मेरे प्रियतम।
वह मैं हूं
वह मैं हूं।'[2]

उसी राधा की खोज के लिए तो कनु ने कहीं सूरज और चांद को काल की अनंत पगडण्डी पर भेज रक्खा है तो कहीं महासागर की उत्ताल भुजाओं के रूप में अपनी भुजाएं फैला दी हैं। जब प्रगाढ़ वासना और उद्दाम क्रीड़ा के क्षणों में वह प्रिय को चन्दन बाहों में कसकर अचेत हो जाती है तब उसे निखिल सृष्टि कनु में लीन होती हुई सी प्रतीत होती है। और फिर 'कनु' के जगाने पर वह संकल्प व इच्छा की

1- कनुप्रिया- पृ0 41

2- वही- पृ0 42

तरह जाग उठती है। वह अनुभूत करती है कि समस्त सृष्टि उनके मिलन या संभोग का ही परिणाम है -

'और यह प्रवाह में बहती हुई
तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम
महज हमारे गहरे प्यार
प्रगाढ़ विलास
और अतृप्त क्रीडा की अनन्त
पुनरावृत्तियाँ हैं -[1]

वस्तुत: पुरुष प्रकृति के संयोग से ही सृष्टि की रचना करता है। 'आदिम-भय' में राधा के मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है वह जानती है कि समस्त सृष्टि वह स्वयं ही है तथापि वह जाने क्यों उससे भयभीत हो जाती है? इसका विश्लेषण वह नहीं कर पाती -

'क्यों मेरे लीला बन्धु
क्या वह आकाश गंगा मेरी मांग नहीं
है?
फिर उसके अज्ञात रहस्य
मुझे डराते क्यों हैं?[2]

और भी-

सुनो मेरे बन्धु
आर यह निखिल सृष्टि
मेरा लीलातन है
तुम्हारे आस्वादन के लिए

1- वही- पृ0 44

2- ,, पृ0 46

तो यह जो भयभीत है - वह छाया तक
किसका है ?
किस लिए है - मेरे मित्र ?[1]

'केलि-सखी' में उक्त आदिम भय रात्रि में अभिसार के संकेत पाकर शांत हो जाता है। वासनाएं प्रबल हो उठती हैं। वह कनु को अपने निर्मम और अंधे कसाव में नागबधू की गुंजलक की भांति कस लेती है। इससे कनु के कंधों, बाहों और होंठों पर उसकी शुभ्र दन्त-पंक्तियों के नीले नीले चिन्ह उभर आते हैं।[2] उसने समय को अपने अलक-पाश में बांध लिया है। सारी सृष्टि व दिशाएं उसमें लीन हो गई हैं अत: वह कनु से कामना करती है कि वातायन बन्द कर दें क्योंकि वही तो एक मात्र उसकी अन्तरंग केलि-सखी है।

अंतिम खण्ड 'इतिहास' और 'समापन' कनुप्रिया की दृष्टि से देखे गये हैं। इनमें आधुनिक संवेदनाओं को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। प्रश्नाकुल मन:स्थितियों के संदर्भ में परम्परा से विनिर्मुक्त राधा के अभिनव व्यक्तित्व की प्रतिस्थापना की गई है। यहां कनुप्रिया की प्रक्रिया और प्रतिक्रियाओं के दूसरे भाव स्तर को उद्घाटित किया गया है। जब कनु राधा को छोड़ इतिहास निर्माण के लिए या यों कहिए कि अपने शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार, युग-सूत्र संवाहक रूप की स्थापना के लिए महाभारत का युद्ध खेलने चले जाते हैं तब राधा के मन की प्रश्नाकुल व जिज्ञासात्मक स्थितियां अपने प्रेम की सार्थकता और सत्यता के लिए उसे अत्यन्त व्याकुल बना देती हैं। वस्तुत: राधा की उक्त स्थिति उसकी मूलवृत्ति नहीं है, तथापि वह उसके प्रेम की कसौटी का एक मात्र साधन होने के कारण प्रथम मूलवृत्ति 'भावाकुल तन्मयता' की पूरक ही सिद्ध हो जाती है। उसे ग्लानि है कि जिस कनु ने उसके साथ रहकर प्रणय का इतिहास लिखा था आज उसने इतिहास -निर्माण

1- वही- पृ0 48-49

2- वही- पृ0 51

के क्षणों से उसे वंचित क्यों रखा ? अत: वह कृष्ण से प्रश्न करती है कि क्या कनु ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उसे सेतु मात्र समझा था ? क्या उसके साथ भोगे हुए क्षणों के इतिहास का कुछ कुछ भी महत्व नहीं ।

जिसको जाना था वह चला गया
हाय मुझी पर पग रख
मेरी बाँहों से
    इतिहास तुम्हें ले गया ।
सुनो कनु, सुनो
    क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी
    तुम्हारे लिए
    लीलाभूमि और युद्ध क्षेत्र के
    अलंघ्य अन्तराल में ।[1]

युद्ध और प्रेम कीसार्थकता-असार्थकता के बीच उसके मन का द्वन्द्व उभर आता है । वह पुन: उसी आम के नीचे जाकर कि जहां उनके प्रेम का इतिहास रचा गया था, कंकड़, पत्ते, तिनके, टुकड़े बुनती रहती है । और फिर सूनी मांग, शिथिल चरण असमर्पिता ही लौट आती है । वह सोचती है क्या उन बीते क्षणों का कुछ अर्थ नहीं था आज कनु महान् हो गया है, अत: युद्ध ही सत्य है ?[2] वह भी अर्जुन की भांति कनु से यह जानने की जिज्ञासा करती है कि सत्य क्या है, युद्ध किंवा प्रेम । किन्तु उसकी दृष्टि में कनु की अनुपस्थिति में वे सारे शब्द-स्वधर्म, कर्म, निर्णय,

---

1- वही- पृ0 60

2- ,, पृ0 63

दायित्व आदि अर्थहीन हैं।

> 'शब्द, शब्द, शब्द -------
> मेरे लिए सब अर्थहीन हैं

वह कुछ अर्थ तभी समझ सकती है कि जब वे उसके पास बैठकर उसके रूखे कुन्तलों को अपनी उंगलियों से उलझाते रहें।[1] उसे इस बात का दृढ़ विश्वास है कि बिना उसके कनु का कोई भी शब्द सार्थक नहीं हो सकता -

> शब्द, शब्द, शब्द
> तुम्हारे शब्द अगणित हैं कनु -
> संख्यातीत
> पर उनका अर्थ मात्र एक है -
> मैं
> मैं,
> केवल मैं।[2]

इससे यह स्पष्ट है कि नारी की उपेक्षा कर (प्रसाद जी के शब्दों में श्रद्धा की उपेक्षा कर) पुरुष अपने इतिहास-निर्माण में कहीं सार्थकता या सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। वह नारी के सहयोग के बिना अधूरा ही रह जाता है। 'समुद्र-स्वप्न' के अन्तर्गत राधा के स्वप्न के माध्यम से कनु के 'इतिहास-निर्माण की दुर्दान्त शक्तियों की निर्मम-प्रक्रियाओं को असफल सिद्ध किया गया है। दायित्व-निर्वहण के लिए महाभारत के युद्ध की भीषण विभीषिकायें होती हैं, प्रलय और संहार होता है। तथापि विजय का निर्णय तो राधा के पक्ष में ही होता है। कनु युद्ध के

1- वही- पृ0 70

2- वही- पृ0 72

समूचे संघर्षों को झेलने के पश्चात् 'असफल-इतिहास को जीर्ण-वसन की भांति त्याग राधा को पाने के लिए उसमें अपने व्यक्तित्व की सार्थकता को खोजने के लिए, उसे पुकार उठते हैं। उन्हें अपने सारे निर्णय भी असफल से लगते हैं -

> 'न्याय-अन्याय, सद् सद्, विवेक अविवेक -
> कसौटी क्या है? 'आखिर कसौटी
> क्या है?[1]

यहां कवि ने कृष्ण के परम्परित व्यक्तित्व को स्वप्न-शैली के माध्यम से नया रूप देने की सफल चेष्टा की है। 'समापन' भाग तक आते-आते राधा के समस्त प्रश्न व आग्रह कनु की पकी हुई पुकार द्वारा अपनी सार्थकता पा लेते हैं। दायित्व से श्रान्त, क्लान्त और उदास कनु के राधा को पुकारने पर वह सब कुछ छोड़ छाड़कर जन्मान्तरों की अनंत पगडण्डी के कठिनतम मोड़ पर खड़ी होकर उसकीप्रतीक्षा करती है ताकि अगली बार कनु के साथ इतिहास गूंथने में सहायक हो सके। राधा इस बार इतिहास को सार्थकता प्रदान करने के संकल्प के साथ प्रस्तुत है। - इस भाव-बोध तक कथा-वस्तु के आते ही प्रस्तुत कृति का उद्देश्य नारी और पुरुष के साहचर्य से ही जीवन का सफल इतिहास रचा जा सकता है, जीवन और व्यक्तित्व का विकास, किया जा सकता है' भी स्पष्ट हो जाता है। इसीलिए तो राधा का कथन है -

> बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
> तुम्हारे इतिहास का ----------।
> --- --- --- ---
> मैं आ गयी हूं प्रिय।
> मेरी वाणी में अग्नि पुष्प गूंथने वाली
> तुम्हारी अंगुलियां
> अब इतिहास में अर्थ क्यों नहीं गूंथती?[2]

1- वही- पृ0 74

2- वही- पृ0 79

प्रस्तुत कृति में वैष्णव भक्तों द्वारा अनुभावित राधा के व्यक्तित्व को आधुनिक वा सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक भाव-बोध के स्तर पर देखा गया है। यही कारण है कि कनुप्रिया द्वारा उठाये गए समस्त प्रश्न एवं आग्रह उसके पौराणिक एवं मध्यकालीन व्यक्तित्व या चरित्र को आधुनिकता एवं शाश्वत् समस्या के नये संदर्भों से जोड़ देते हैं। कृष्ण को भी कवि-कल्पना द्वारा प्रतिष्ठित कनुप्रिया के माध्यम से देखा गया है। इसीलिए तो इस कृति में कृष्ण की अपेक्षा राधा ही प्रधान है, और जीवनकी सार्थकता तक पहुंचने का दूसरा प्रश्न भी उसी के माध्यम से अपनी सफलता पा सका है। यहां कनुप्रिया के द्वारा आधुनिक व्यक्ति एवं उसके अस्तित्व रक्षा की भावना को भी प्रतिष्ठित किया गया है। यही कारण है कि वह चरम तन्मयता का साक्षात्कृत क्षण और इतिहास की बवर्ष दुर्दान्त शक्तियों की निर्मम प्रक्रिया के संघर्ष को झेल कर उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित हुए बिना अपने प्रश्न एवं आग्रहों की कसौटी पर समस्त को कसने में अंततः सफल हो पाती है। परम्परा से विनिर्मुक्त राधा के नवीन-चरित्र की अवतारणा करने के लिए कवि ने फ्रायड एवं कामू सार्त्र के यौन एवं अस्तित्ववादी सिद्धान्तों से भी प्रभाव व प्रेरणा ग्रहण की है। प्रस्तुत कृति में आद्योपान्त कनुप्रिया के मन की विविध प्रतिक्रियाओं के आधार पर कथा-वस्तु का क्रमिक विकास हुआ है, कथा-सूत्रों को गति और अन्विति मिली है, अतः इस कृति का नामकरण 'कनुप्रिया' भी अपनी स्वतः सार्थकता सिद्ध कर लेता है।

प्रस्तुत कृति प्रगीत-शैली पर आधारित होने के कारण इसमें परम्परागत छंदों की योजना नहीं है। गीति-काव्य की समस्त विशेषताएं -रागात्मकता, वैयक्तिक भाव और अनुभूति की तीव्रता कनुप्रिया के भावाकुल तन्मयता एवं प्रश्नाकुल मन की विभिन्न स्थितियों के क्षणों में व्यंजित हुई है।

इसकी काव्य-भाषा भावों को अभिव्यक्त करने में सफल हो पाई है।

रोमानी भाषा-शैली के द्वारा कवि ने भाषा को सम्प्रेषणात्मक शक्ति प्रदान की है। अत: इसमें उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया गया है चाहे वे राधा-कृष्ण के पौराणिक संदर्भों में न खप सकें किन्तु उनके प्रणय-बोध की अभिव्यंजना में अपनी अक्षमता प्रकट नहीं करते। इससे कथ्य में भी प्रभावोत्पादकता आ गई है। अत: कहा जा सकता है कि इसमें कवि का अपना निजी भाषा-संस्कार है जो देश-काल विशेष की अपेक्षा सार्वकालिक व सार्वदेशिक भाव-बोध के अधिक निकट है। कुछ शब्द ऐसे हैं जो तत्सम और देशज के जोड़ों से गढ़े गये हैं। यथा-

'शोख चंचल विचुंबित पलकें, आम-बौर, 'महासागर मेरे ही निरावृत-जिस्म का', 'निर्वसना जलपरी' शिथिल गुलाबतन' तुम्हारी बावरी मित्र', अनावृत बाहें आदि। 'राधा के लिए 'मित्र' राधन' जैसे शब्दों का प्रयोग कर कवि ने भाव-बोध के नये स्तर उद्घाटित किये हैं।

भावों की अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ाने के लिए नवीन प्रतीकों, बिम्बों एवं नये उपमानों का प्रयोग किया गया है। 'आम्र-बौर का अर्थ' गीत में संझा बिरियां राधा को बुलाने के लिए अर्द्धोन्मीलित कमल का संकेत, अंजुरियों में भरने के लिए अंजुरी भर बेले के फूलों का संकेत, तथा सहकार के नीचे महावर लगाने के लिए आलस्य के दो फूलों का संकेत आदि ऐसे ही नवीन प्रतीक हैं। कवि ने अनेक स्थानों पर भावों को चाक्षुष एवं स्पर्श-बिम्बों के माध्यम से व्यंजित किया है। स्पर्श-बिम्ब का एक उदाहरण दृष्टव्य है। राधा का कथन है -

> और यह मेरा कसाव निर्मम है
> और अन्धा, और उन्माद भरा, और मेरी
> बाहें
> नाग बधू की गुंजलक की भांति
> कसती जा रही है

और तुम्हारे कन्धों पर, बांहों पर,
होठों पर
नाग वधू की शुभ्र दन्त -पंक्तियों के
नीले - नीले चिन्ह
उभर आये हैं ।[1]

विशेषकर ऐसे स्पर्श-जन्य बिम्ब 'मंजरी परिणय' और 'सृष्टि-संकल्प' के भागों में हैं। नूतन-बिम्बों एवं प्रतीक योजना की भांति ही कवि को भाषा की चित्रमयता एवं अलंकरण की शैली में भी पूर्ण सफलता मिली है।

ऊपर विवेचित विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कृति 'कनुप्रिया' कथ्य एवं शिल्प के दोनों ही पक्षों में अपने मौलिक एवं नूतन गरिमा मण्डित स्तर को बनाये रखती है। उसमें एक ओर कथ्य की सम्प्रेषणीयता है तो दूसरी ओर रूपाकार की प्रौढ़ता भी।

डा0 भारती के काव्य में भाव एवं रस-योजना :

नई कविता बौद्धिक युग की उपज है। इसलिए उसमें रागात्मक तत्वों की अपेक्षा बौद्धिक व तार्किक तत्वों की प्रधानता है। अत: आज की क्षण-बोध-सापेक्ष कविता से रस और साधारणीकरण की अपेक्षा करना उसके महत्व को ठेस पहुंचाना है। आज के जीवन में अनिश्चितता, बिखराव, टूटन व घुटन की अनास्थापरक स्थितियां उभरी हैं। इन सबके परिणामस्वरूप आज का व्यक्ति स्वयं से भी घबराया हुआ तथा सामाजिकता के प्रति भी सशंकित एवं अति बौद्धिक हो उठा है। इस व्यक्ति-बोध का प्रभाव नई कविता पर भी पड़ा है। अत: इस स्थिति में नयी कविता में निश्चित वा

1- कनुप्रिया पृ0 51

अखण्डित रस को ढूंढना व्यर्थ का प्रयास होगा। प्रयोगवादी काव्य का लक्ष्य रसानुभूति कराने के स्थान पर सत्यानुभूति कराना है। रस-सिद्धान्त की शाश्वत भावना से इसका कोई सम्बंध नहीं है।"[1] डा० भारती जी ने भी इसका समर्थन 'नया रस' शीर्षक कविता के माध्यम से किया है -

प्रभु
इस रस को
इस नये रस को क्या कहते हैं ?
जिसमें श्रृंगार की आसक्ति नहीं
जिसमें निर्वेद की विरक्ति नहीं
जिसमें बाहों के
फूलों - जैसे बन्धन के
आकुल परिरम्भण की गाढ़ी तन्मयता के
क्षण में भी
ध्यान कहीं और चला जाता है
तन पिघले फूलों की
आग पिया करता है
पर मन में कई प्रश्न चिन्ह उभर
आते हैं।[2]

'प्रश्न चिन्ह' शब्द प्रयोग के द्वारा कवि ने रसानुभूति में बौद्धिक-चिन्तना की रेखाओं को उभारा है।

1- डा० रमाकान्त शर्मा- 'छायावादोत्तर हिन्दी-कविता- पृ० 300

2- सात गीत वर्ष- पृ० 25

नये कवियों का व्यक्तित्व भी जीवन की तथाकथित विसंगतियों, अन्तर्विरोधी स्थितियों एवं अनेक विध जटिलताओं से ग्रस्त है। यही कारण है कि उनके काव्य में एक ओर आशंका, निराशा तो दूसरी ओर आस्था और साहस का स्वर ध्वनित हुआ है। अतएव, पुनश्च कहा जा सकता है ऐसी विरोधाभासी स्थितियों में रस को उसके संपूर्ण अवयवों तथा पूर्ण परिपक्वता के साथ नहीं देखा जा सकता, हां केवल उसके कुछ अंशों की प्रतीति ही की जा सकती है। तात्पर्य यह है कि रस के किसी अंग-विशेष के आधार पर केवल यथेष्ट प्रभाव को उत्पन्न करना आज की कविता का मूल उद्देश्य रह गया है। डा० भारती ने भी काव्य में रस को महत्व न देकर उसके प्रभाव को ही रस रूप में गृहीत किया है। 'कविता का मुख्य कार्य आज के युग में रूढ़ अर्थों में रसोद्रेक मात्र न रहकर 'प्रभाव डालना' हो गया है। बहुत सी कवितायें भारती को बहुत अच्छी लगती हैं जिनमें परम्परागत रस-तत्व कम रहता है पर वे प्रभावित बहुत करती है।[1] डा० भारती जी की रस में प्रभाव-ग्रहण की दृष्टि आधुनिक यथार्थपरक दृष्टिकोण के अधिक निकट है।

अज्ञेय जी ने प्रभाव के स्थान पर काव्य में चमत्कार या वक्रता की उपस्थिति को रसान्तर्गत देखने की चेष्टा की है। वस्तुत: आज के परिप्रेक्ष्य में काव्यजनित प्रभाव या चमत्कार ही कविता को संवेद्य या आस्वाद्य बनानेवाले प्रमुख तत्व हैं। डा० भारती जी की व्यंग्यपरक कविताओं में वक्रता जनित चमत्कार की स्थिति विशेष है।

ऊपर विवेचित तथ्यों के आलोक में डा० भारती जी के काव्य में भाव एवं रस के बोध पर प्रकाश डाला जा रहा है।

श्रृंगार रस :

डा० भारती जी की 'कनुप्रिया' में संयोग और विप्रलम्भ श्रृंगार के कुछ प्रसंग

1- दूसरा सप्तक- प्र० सं० 1951-अज्ञेय
वक्तव्य- पृ० 178

बड़े ही आकर्षक हैं ।[1] किन्तु अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें केवल स्मृति संचारी के माध्यम से रस-विशेष के प्रभाव की सृष्टि की गई है । एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

‘निभृत एकान्त में दीपक के मंद आलोक में
अपने उन्हीं चरणों को
अपलक निहारती हूं
बावली सी उन्हें बार बार प्यार करती हूं
जल्दी-जल्दी में अधबनी उन महावर
की रेखाओं को
चारों ओर देखकर धीमे से
चूम लेती हूं ।[2]

उपर्युक्त चित्र में शाम का निभृत एकान्त और कनु द्वारा रची गई ‘अधबनी महावर की रेखाएं’ उद्दीपन विभाव हैं । स्मृति संचारी है । ‘चरणों को अपलक निहारना’ फिर उन्हें ‘बार बार चूम लेना’ आदि अनुभाव हैं । आलम्बन कृष्ण और आश्रय राधा हैं । इसी प्रकार ‘ठण्डा-लोहा’ संग्रह की कतिपय रचनाओं में भी श्रृंगार रस के प्रभाव को जगाया गया है -

इस सीढ़ी पर, यहीं जहां पर लगी हुई है काई
फिसल पड़ी थी मैं, फिर बांहों में कितनी
शरमाई ।
यहीं छुप न तुमने उस दिन तोड़ दिया था मेरा कंगन
यहां न आऊंगी अब, जाने क्या करने लगता मन ।[3]

1- दे0 कनुप्रिया- पृ0 27, 54 आदि ।

2- कनुप्रिया- पृ0 26

3- ठण्डा-लोहा- पृ0 12

इन पंक्तियों में घाट की सीढ़ियों को तोड़-फोड़ कर बन की तुलसी का उगना, झुरमुट से छनकर जल पर पड़ती हुई सूरज की परछाईं, तोतापंखी किरनों में, हिलती बांसों की टहनी, आदि उद्दीपन विभाव हैं। स्मृति संचारी हैं। तथा प्रिय की बांहों में शरमाना, कंगन टूटने पर यहां न आऊंगी कहना आदि अनुभाव हैं। आलम्बन प्रिय है। आश्रय नायिका है। यहां स्थायी भाव रति स्मृति संचारी द्वारा व्यक्त हुआ है। इसी प्रकार 'बेला महंका', 'बादलों की पांत' तथा सात गीत-वर्ष की 'आंगन' और 'घाटी का बादल' आदि कविताओं में भी श्रृंगार रस के उन्मेष या प्रभाव को देखा जा सकता है।

करुणा भाव या करुण रस :

डा० भारती जी की कविताओं में 'करुण रस या स्थायी भाव 'शोक' को पुष्ट करनेवाले सभी उपकरण तो नहीं मिलते फिर भी कई स्थलों पर करुणा या शोक भाव के प्रभाव या बोध की प्रतीति होती है। 'ठण्डा लोहा' की 'कविता की मौत', 'फूलों की मौत', 'सुभाष की मृत्यु पर' आदि कुछ ऐसी ही कविताएं हैं। 'कविता की मौत' शीर्षक कविता को पढ़ने पर करुणा या शोक भाव का बोध करानेवाले उपकरणों को निम्न-निर्देशित रूप से देखा जा सकता है।

आलम्बन विभाव :

गरीबिन मजदूरिन का तपेदिक से मरनेवाला उसकी मांग का सिंदूर (पति) का शव, तथा निराधार अवस्था में स्वयं मजदूरिन की मृत्यु, आदि आलम्बन-विभाव हैं। आश्रय कवि या पाठक है। अनुभाव के अन्तर्गत उनकी जीवन-लीला को समाप्त होते देखकर कवि की उनके प्रति व्यक्त संवेदनापरक उक्तियां एवं शोकपरक उद्गार यथा 'श्याम की माया! और अब वे कोयले (उनके बच्चे) भी हैं अनाथ! और मर गई कविता वहीं एक तुलसी पत्र और दो बूंद गंगा जल बिना, आदि। इसी प्रकार(उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत) आज की विषम-परिस्थितियां, बेरोजगारी, अनैतिकता, भूख आदि को गिनाया जा

सकता है। अतः स्पष्ट है कि इस कविता में 'शोक' भाव को रस दशा तक पहुंचाने का एक बिखरा उपक्रम मिलता है। इसी प्रकार 'दो आवाजें' कविता में भी शोक भाव की व्यंजना हुई है।

'उफ मेरी बाहों में शव- जैसा ठण्डा
कौन गिरा ?
ओहो तुम हो ?
आखिर मंजिल तक पहुंच गये,
सब खत्म हुआ ?
अब कितना शीतल है माथा
ओ जीवन के नरमेघ यज्ञ की पूर्णाहुति
अंधियारे की लपटें तुमको धीरे धीरे
आ जायेंगी ।'[1]

उक्त पंक्तियों में मृत्यु-बोध के एहसास द्वारा आश्रय पाठक या कवि के मन में शोक या करुणा के भाव को जगाया गया है। आलम्बन है जिंदगी से हारे व्यक्ति का ठण्डा-शव जैसा जिस्म। उद्दीपन के अन्तर्गत अंधियारे की नरभक्षी लपटें-तथा उसकी भयंकर बाचिक चेष्टाएं आएंगी। अनुभाव का अभाव है।

उत्साह भाव की व्यंजना :

आज की विषम व प्रतिकूल स्थितियों ने व्यक्ति को हतोत्साहित व निराशा-पूर्ण बना दिया है। किन्तु फिर भी जहां कवि संघर्षों से लड़ने, कष्टों को हंसते हुए झेलने की बात करता है, वहां आशा और उत्साह का भी भाव प्रकट हुआ है। ऐसी कविताओं में आलम्बन विभाव के अन्तर्गत आज की विषम परिस्थितियां एवं जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियां, आदि को गिनाया जा सकता है। स्थायी भाव उत्साह या

1- ठण्डा-लोहा- पृ0 66

आशा है। उद्दीपन है आज की विषम परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनानेवाली व्यक्ति या कवि की अपराजेय शक्ति या अटूट धैर्य एवं आशा की भावना। अनुभाव में आस्था, एवं उत्साह परक उद्गारों तथा क्रिया-व्यापारों का चित्रण हुआ है। इस दृष्टि से 'सात गीत वर्ष' संग्रह की 'जिज्ञासा' 'कौन चरण' 'आस्था' और 'टूटा पहिया' आदि कविताएं उल्लेखनीय हैं। अत: यहां केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

क्या जाने कब
इस दुरूह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता
हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर
जाय।
अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
बड़े बड़े महारथी
अकेली निहत्थी आवाज को
अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचलना देना चाहें
तब मैं
रथ का टूटा पहिया
उसके हाथों में
ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता हूं।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में आज के टूटे हुए व्यक्ति की अपराजेय शक्ति का एहसास 'अभिमन्यु के टूटे हुए पहिये' के द्वारा कराया गया है। अत: यहां आश्रय होगा

1- सात गीत वर्ष - पृ0 79-80

'दुस्साहसी अभिमन्यु आलम्बन है निहत्थी आवाज को अपने ब्रह्मास्त्रों से कुचल देनेवाले बड़े बड़े महारथी एवं दुरुह चक्रव्यूह । 'ब्रह्मास्त्रों से लोहा ले सकता है' जैसी अभिमन्यु की गर्वोक्तियाँ अनुभाव है । स्थायी भाव उत्साह है । गर्व, औत्सुक्य, हर्ष आदि संचारी भाव हैं । 'अंधायुग' के कतिपय स्थलों पर वीभत्स रस वीर रस की व्यंजना में सहायक होकर आया है । इस दृष्टि से दुर्योधन की दुर्गति पर अश्वत्थामा का निम्नोद्धृत कथन द्रष्टव्य है -

कैसे दुर्योधन की दोनों कनपटियों
पर
दो-दो नसें सहसा फूलीं और
फूट गयीं
कैसे होंठ खिंच आये
टूटी हुई जांघों में एक बार
हरकत हुई
अपनी आँखें खो
दुर्योधन ने देखा
अपनी प्रजाओं को
उनके सम्मुख मुझको
घोषित करो दो तुम सेनापति
मैं पथ ढूंढूंगा प्रतिशोध का ।[1]

यहाँ दुर्योधन के वैभव नाश, पराजय एवं उसकी रूप की वीभत्सता देखकर अश्वत्थामा के हृदय में उत्पन्न प्रतिशोध या हिंसा का भाव वीर रस को उद्बुद्ध कर देता है ।

1- अंधायुग (षष्टम संस्करण 1973) पृ0 66-67

रौद्र रस : इसका स्थायी भाव क्रोध है जो अपने से प्रतिकूल विषय वस्तु या व्यक्ति से उत्पन्न होता है। 'अंधा युग' के कतिपय स्थलों पर रौद्र रस की सरस व्यंजना हुई है। इसके लिए अश्वत्थामा की निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए -

तुमने कहा था
नरो वा कुंजरो वा।
कुंजर की भाँति
मैं केवल पदाघातों से
चूर करूँगा धृष्टद्युम्न को।
पागल कुंजर
से कुचली कमल-कली की भाँति
छोड़ूँगा नहीं उत्तरा को भी
जिसमें गर्भित है
अभिमन्यु- पुत्र
पाण्डव कुल का भविष्य।

यहाँ अर्द्ध सत्यभाषी युधिष्ठिर आलम्बन है। युधिष्ठिर का अर्द्ध-सत्य-कथन 'नरो वा कुंजरो वा।' तथा पिता के वध से उत्पन्न प्रतिहिंसा की भावना व पाण्डवों की अनीतिपूर्ण आचरण उद्दीपन-विभाव है। स्थायी भाव क्रोध है। आश्रय है अश्वत्थामा। पाण्डव-कुल के विनाशार्थ अश्वत्थामा की क्रूर दृष्टि एवं उसके आवेशपूर्ण उग्र शब्दों द्वारा अनुभाव व्यक्त हुआ है। उग्रता, आवेग, मद, अमर्ष, स्मृति आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार अश्वत्थामा का निम्नोद्धृत कथन भी देखिए -

---

वे भी निश्चय मारे जायेंगे
अधर्म से ।
सोच लिया
मातुल मैंने बिलकुल सोच लिया
उनको मैं मारूंगा ।
मैं अश्वत्थामा
उन नीचों को मारूंगा ।[1]

इसी प्रकार 'सात गीत वर्ष' कृति का एक अंश है -

चेक बुक हो पीली या लाल
दाम सिक्के हों या शोहरत -
कह दो उनसे
जो खरीदने आये हों तुम्हें
हर भूखा आदमी बिकाऊ
नहीं होता है ।[2]

इसमें आलम्बन विभाव है - भूखे आदमी को खरीदनेवाला अर्थ-पिशाच या पूंजीपति । उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत उस खरीदने वाले अमानुषिक व्यक्ति की पीली या लाल चेक-बुक, नगद सिक्के अथवा शोहरत आदि वस्तुएं आयेंगी । आश्रय है शोषित और पीड़ित वर्ग का पक्षधर कवि या पाठक ।

1- वही- पृ0 64

2- सात गीत वर्ष- पृ0 73

'हर भूखा आदमी बिकारु नहीं होता' कवि के इस कथन में अनुभाव है। आवेग, अमर्ष, आक्रोश का भाव, गर्व आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार 'प्रमथ्यु' व निर्माण-योजना आदि कविताओं में भी प्रतिक्रियावादियों एवं भ्रष्ट नेताओं के प्रति आक्रोश का भाव है, किन्तु रस की निष्पत्ति नहीं हो पाई है।

वीभत्स रस :

इसका स्थायी भाव घृणा या जुगुप्सा है। घृणित पदार्थों आचरणों एवं विकलांग व्यक्ति के दर्शन से उक्त भाव की पुष्टि होती है। इसमें प्रायः आश्रय की अपेक्षा नहीं होती। इस दृष्टि से 'सात-गीत-वर्ष' संग्रह की 'प्रमथ्यु' शीर्षक कविता का एक अंश उद्धरित है -

देख रहे हैं कैसे जकड़ा हुआ है
शिलाओं से
कैसे वह कन्धे पर बैठा हुआ गिद्ध
नोच-नोच खाता है उसका
हृदय पिण्ड
और रात ढलते-ढलते कैसे
सारा घाव फिर से पुर जाता है [1]

यहाँ आलम्बन होगा प्रमथ्यु का क्षत-विक्षत शरीर। प्रमथ्यु का शिलाओं से जकड़ा होना, गिद्ध का उसके हृदय-पिण्ड को नोच-नोच खाना, इससे उसके उभरे हुए घाव, आदि का दर्शन उद्दीपन विभाव है।

1- वही- पृ० 19

आश्रय है , कवि या पाठक, दर्शक आदि । अनुभाव की व्यंजना नहीं हुई है । उसकी हात-विहात दशा को देखकर दर्शक के मन में उत्पन्न व्याधि, विषाद, मरण आदि संचारी भाव हैं । 'अंधायुग' काव्य-नाटक में इस प्रकार के कई प्रसंग आए हैं । इसके लिए एक उद्धरण देखिए -

धुंआ, लपट, लोथें, घायल घोड़े,
टूटे रथ
रक्त , मेद, मज्जा, मुंड,
खंडित कबंधों में
टूटी पसलियों में
विचरण करता था अश्वत्थामा[1]

उक्त चित्र में युद्ध-भूमि आलम्बन है, धुआं, लपट, मांस के लोथें, घायल घोड़े, रक्त मेद, मज्जा मुंड खण्डित कबंधादि उद्दीपन विभाव है । अनुभाव की व्यंजना नहीं हुई है । इसी प्रकार एक और भी दृश्य है -

पंजों से गला दबोच लिया
आंखों के कटोरे से दोनों साबित गोले
कच्चे आमों की गुठली जैसे
उछल गए
खाली गड्ढे में काला लहू उबल पड़ा[2]

1- अंधायुग- पृ0 83

2- वही- पृ0 81

इस प्रकार युद्ध-भूमि की संहारक प्रवृत्तियों से उत्पन्न घृणित एवं विकर्षक दृश्यों के द्वारा 'घृणा' भाव की व्यंजना हुई है।

भयानक रस :

भयकारी व्यक्ति या वस्तु के दर्शन या प्रतीति से उत्पन्न भय का भाव (जो इसका स्थायी भाव है) विभाव, उद्दीपन, अनुभाव, संचारी आदि से पुष्ट होकर 'भयानक' रस की प्रतीति कराता है। इस दृष्टि से 'अंधा युग' कृति के कुछ अंशों को देखा जा सकता है। यथा -

'बादल नहीं हैं
ये गिद्ध हैं
लाखों ~~xxxxxx~~ करोड़ों
पाँखें खोले
सारी कौरव नगरी
का आसमान
गिद्धों ने घेर लिया
झुक जाओ
झुक जाओ
ढालों के नीचे
छिप जाओ
नर भक्षी हैं
ये गिद्ध भूखे हैं।[1]

1- वही- पृ0 16

इस चित्र में भयंकर बादलों की नरभक्षी गिद्ध के रूप में प्रतीति वा कल्पना की गई है। अत: यहां नरभक्षी गिद्ध आलम्बन है। गिद्धों को भयंकर चेष्टाएं, यथा पंखों की ध्वनि, व आसमान को घेरना आदि उद्दीपन विभाव हैं। स्थायी भाव भय है। आश्रय उक्त दृश्य के देखनेवाले प्रहरी हैं। तथा `झुक,जाओ`, `डालों के नीचे छिप जाओ` `ये नरभक्षी भूखे गिद्ध हैं` आदि भय-बोधक उद्गारों द्वारा अनुभाव व्यक्त हुआ है। उक्त दृश्य के भय से उत्पन्न त्रास, चिन्ता, दैन्य आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार एक उद्धरण और भी लीजिए -

मायावी है वह
रूप धारण करता है नित नये-नये
बन्द कर दिया
जब रक्षाकगण ने नगर द्वार
धारण कर रूप
एक गृद्ध का
बन्द नगर-द्वारों के
ऊपर से
उड़कर चला आया,
और लगा खाने
छत पर सोये बच्चों को
बन्द करो
जल्दी से द्वार पश्चिम के।[1]

यहां पाण्डव -दल के पक्षी युयुत्सु की एक मायावी व [illegible] शिशु-भक्षी रूप की कल्पना के द्वारा भयानक रस की योजना की गई है। `ठण्डा लोहा` संग्रह की `दो आवाजें` और मेरी परछांही` आदि शीर्षक कविताओं में भी

1- वही- पृ0 54

भयानक रस की प्रभावोत्पादक व्यंजना हुई है। प्राय: अदभूत रस का अभाव है। इसी प्रकार शांत रस की नियोजना भी बहुत ही कम हो पाई है। `अंधायुग` कृति के पांचवें अंक में युद्धिष्ठिर की कुछ निर्वेदपरक उक्तियों में शांत रस की अनुभूति की जा सकती है।

व्यंग्यजनित रसानुभूति :

आधुनिक काव्य में व्यंग्य की एक प्रधान प्रवृति भी उभर आई है। अनेक कवियों ने वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक खोखलेपन, आडम्बर एवं भ्रष्टाचारपरक प्रवृत्तियों पर व्यंग्य किया है। अतएव कतिपय आधुनिक आलोचकों ने व्यंग्य को भी रस के अन्तर्गत भुक्त करने का प्रयास किया है। `युगीन यथार्थ में भी रस होता है और व्यंग्य का रस से क्या विरोध ? उसमें करुणा, हास्य व अमर्ष आदि भावों की सत्ता निश्चितरूप से रहती है, जो मूलत: मानवीय संवेदना पर आधारित है।`[1] इसी प्रकार डा0 हरिचरण शर्मा जी का भी मत है - `व्यंग्य से साहित्य का जो आस्वाद मिलता है उसको नये कवियों ने कोई नाम नहीं दिया है क्योंकि वे सिद्धान्तों की प्रस्थापना में विश्वास नहीं करते।-----काव्य में व्यंग्य से उत्पन्न ~~पपपप~~ मन:स्थिति को अथवा आस्वाद विशेष को `व्यंग्य रस` कह देना अनुचित न होगा।`[2] इस दृष्टि से देखाजाय तो डा0 भारती जी के काव्य में भी व्यंग्य-विवृति का एक खासा रूप मिलता है। उनकी युगीन यथार्थ पर आधारित रचनाओं में कहीं करुणा, कहीं हास्य और कहीं अमर्ष-आक्रोश आदि प्रकार की चित्तवृत्तियों को रसनीय बनाने की सुंदर योजना मिलती है। `सात गीत वर्ष` संग्रह की `वृहन्नला`, `निर्माण-योजना`, `प्रमथ्यु`, `बाणभट्ट` आदि कविताओं में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से भाव विशेष को रस दशा तक पहुंचाने का उपक्रम मिलता है। नागरिक सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए कवि ने अपनी विषादग्रस्त मन:स्थिति का चित्रण किया है -

---

1- डा0 नगेन्द्र, रस सिद्धान्त- पृ0 349

2- डा0 हरिचरण शर्मा- `नयी कविता : नये धरातल- पृ0 179

'जैसे शीशे में चटखे दरार
सहसा यह मुझको एहसास हुआ
यह सब है किसी का
यह पगडण्डी , यह गांव- खेत,
सुग्गों के हरे पंख
गति, जीवन :
सब का सब और किसी का
मेरा है केवल निर्वासन, निर्वासन
निर्वासन-------
---------------------1

'अंधायुग' काव्य-नाटक में प्रहरियों के संवादों में भी व्यंग्यात्मकता अधिक तीक्ष्ण बन गई है। देखिए -

प्रहरी-1	- मर्यादा- ?
प्रहरी-2	- अनास्था।
प्रहरी-1	- पुत्र शोक।
प्रहरी-2	- भविष्यत।
प्रहरी-1	- ये सब

राजाओं के जीवन की शोभा है [2] प्रहरियों के इस संवाद में युद्धप्रिय शासकों के प्रति जन-साधारण की घृणा का भाव, तथा शोकाकुल व विषादग्रस्त मन:स्थिति का अंकन भी बड़ी व्यंग्यपूर्ण शैली में हुआ है। इन व्यंग्योक्तियों को पढ़ या सुनकर पाठकों या दर्शकों का हृदय भी रससिक्त हो जाता है।

1- सात गीत वर्ष- पृ0 29

2- अंधायुग- पृ0 28

उद्वेग रस :

डा0 उर्वशी सूरती ने आधुनिक जीवन में निराशा एवं उदासीनता मूलक दुःखात्मक भावों की प्रधानता के आधार पर उद्वेग रस की परिकल्पना करते हुए उसके अवयवों पर भी प्रकाश डाला है -देखिए -

स्थायी भाव-	चिन्ता
आश्रय-	असंतुष्ट चित्रवाला, अभावग्रस्त, भग्न-हृदय व्यक्ति ।
आलम्बन- विभाव	आश्रय के हृदय में उद्वेग उत्पन्न करनेवाले प्रसंग, पात्र दृश्य ।
उद्दीपन विभाव-	आश्रय के दिल में आशा-निराशा असंतोष, आकुलता, घबराहट, बेचैनी, अनुताप, भय आदि उत्पन्न करनेवाले निमित्त ।
अनुभाव-	आलम्बन की भर्त्सना आत्म-तिरस्कार, आत्महनन की प्रवृत्ति, आदि ।

संचारी भाव :

संभ्रम अर्थात् घबराहट, व्याकुलता, उन्माद, दैन्य, विषाद, ग्लानि, असंतोष, अनास्था, अशान्ति आदि ।[1] इसी दृष्टि से डा0 उर्वशी सूरती ने 'अंधायुग' को उद्वेग रस प्रधान प्रबंध काव्य मानते हुए कहा है - 'द्वापर के अंत के साथ शंकादि मनोविकार शांत नहीं हुए, उसकी विकृति ने मानव-जीवन को उद्वेग से उत्पीड़ित कर दिया जिससे मोह से मूढ़ मनुष्य अंधा बन गया, उसने 'अंधायुग' निर्माण किया ।"[2] उदाहरण के रूप में महाभारत के युद्ध से उत्पन्न युधिष्ठिर की

1- दे0 डा0 उर्वशी सूरती- 'आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान, प्रकरण-6-रस, पृ0 140

2- दे0 वही- पृ0 142

आत्म-ग्लानि एवं संजय, विदुर आदि के अनास्था व विषादपरक प्रसंग देखे जा सकते हैं। एक उदाहरण ले लीजिए -

ऐसे भयानक महायुद्ध को
अर्द्ध सत्य, रक्तपात, हिंसा से जीतकर
अपने को बिल्कुल दास हुआ अनुभव
करना
यह भी यातना ही है ।
बाकी बचा मैं
देखने को अंधियारे में निर्निमेष
भावी अमंगल पग
किसको बताऊं किन्तु
मेरे ये कुटुम्बी अज्ञानी है, दुर्विनीत हैं,
या जर्जर हैं ।[1]

उपर्युक्त उदाहरण में अर्द्ध सत्य, रक्तपात, व हिंसा से जीता हुआ महाभारत का युद्ध आलम्बन विभाव है। आश्रय है युधिष्ठिर। स्थायी भाव चिंता है। भविष्य की अमंगलसूचक आशंका, राज्य में पनपनेवाली आत्महननकारी प्रवृत्तियां एवं युधिष्ठिर का अज्ञानी, दुर्विनीत व जर्जर कुटुम्ब उद्दीपन विभाव है। अपने को हारा हुआ तथा बिल्कुल दास सा अनुभव करना, तथा अपने जीवित रहने के प्रति तिरस्कार की भावना, आदि अनुभाव हैं। संताप, अनुताप, यातना, दैन्य-विषाद, आदि संचारी भाव हैं जिसकी अभिव्यक्ति युधिष्ठिर के वाचिक एवं मानसिक अनुभावात्मक उद्गारों से हुई है। इसी प्रकार 'ठण्डा-लोहा' संग्रह की

1- अंधायुग- पृ0 106-107

'घबराहट की शाम', 'प्रतिध्वनि', 'मेरी परछांही और 'संक्रांति' जैसी कविताओं में भी उद्वेग रस की अभिव्यक्ति हुई है।

अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि डा० धर्मवीर भारती जी के काव्य में, नई कविता में रस का अभाव देखनेवाले लोगों को भी रस का आस्वाद मिल जायेगा।